श्री रघुनाथ मन्दिर

इतिहास और कथा

अ·बी·के·शास्त्री

श्री रघुनाथ मन्दिर

(इतिहास और कथा)

श्री रघुनाथ मन्दिर

इतिहास और कथा

डॉ० बी० के० शास्त्री
एम. ए. पी-एच. डी.

राजेश प्रकाशन, जम्मू (कश्मीर)

दो शब्द

सनातन धर्म की विशेषता यह है कि उसमें जहां एक ओर गंभीर चिंतन करने वाले बुद्धिजीवियों के लिए वेदों और उपनिषदों के गूढ़ दर्शन हैं, वहीं जनसाधारण के लिए पुराणों की रोचक कथायें भी हैं जिनमें भगवान् के नाना अवतारों की लीलाओं तथा देवी-देवताओं, संत महात्माओं और भक्तों की गाथाओं का वर्णन हैं। हमारे मंदिरों में इन्हीं अवतारों, देवी-देवताओं और गाथाओं की मूर्तियों के माध्यम से साकार रूप को प्रदर्शित किया जाता है, जिनका दर्शन और स्मरण कर भक्त का मन आनंद-विभोर हो उठता है।

मेरे पूर्वजों ने विशेषकर महाराजा रणबीरसिंहजी ने, हिंदुओं के लिए ऐसे अनेक मंदिरों की स्थापना की जिनमें धार्मिक और सांस्कृतिक विरासत के अनेक महत्वपूर्ण पक्षों के दर्शन होते हैं। उनमें जम्मू के श्री रघुनाथ मंदिर का परिसर कई दृष्टियों से अद्भुत् और अद्वितीय है। कहा जा सकता है कि इस परिसर में हिंदुत्व के समूचे विराट स्वरूप के एक ही स्थल पर दर्शन किए जा सकते हैं और नाना अवतारों, देवी-देवताओं और पौराणिक गाथाओं को गोचर रूप में देखा जा सकता है। इसमें मैंने भी यथाशक्ति योगदान देने का प्रयास किया है, और शंकर भगवान् की कृपा से उत्तर भारत का पहला नटराज मंदिर शिवलिंग सहित कुछ वर्ष पहले निर्मित हो गया।

यदि दर्शनार्थियों को इस मंदिर की तथा उसके संस्थापकों की पृष्ठभूमि दे दी जाय और उसमें प्रदर्शित अवतारों, देवी-देवताओं, संतों,

भक्तों आदि की कथाओं की जानकारी भी हो तो जहां उनकी जिज्ञासा का समाधान हो जाएगा, वहीं इस विशाल मंदिर के विविध खण्डों के दर्शन का आनंद भी दुगना हो जाएगा। इसी उद्देश्य को लेकर डा० वी० के० शास्त्री ने श्री रघुनाथ मंदिर के संबंध में बड़े परिश्रम से प्रस्तुत पुस्तक तैयार की है। आशा है सभी पाठक और दर्शनार्थी इससे लाभ उठायेंगे।

दशहरा
2-10-87 — डॉ० कर्णसिंह

भूमिका

विशाल जम्मू व कश्मीर रियासत के निर्माता महाराजा श्री गुलाब सिंह व उनके सुपुत्र महाराजा श्री रणवीरसिंह जी का धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान रहा है। इन दोनों महाराजाओं ने अद्भुत् मन्दिर समूहों का निर्माण करवा कर डुग्गर भूमि में उत्तरवाहिनी पुरमण्डल और जम्मू नगर को सांस्कृतिक स्वरूप प्रदान किया था। इन्होंने श्री रघुनाथ मन्दिर समूह की स्थापना करके केवल जम्मू नगर को 'सिटी आफ टैम्पलस' के नाम से ही विश्रुत नहीं किया अपितु भारत के काशी, हरिद्वार, जगन्नाथपुरी, बद्रीनारायण, वृन्दावन, प्रयाग, अयोध्या, गया, गोदावरी, रामेश्वर और द्वारिकापुरी जैसे प्रसिद्ध सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी दान और पुण्य के कार्य करने में कीर्तिमान स्थापित किए।

आज श्री रघुनाथ मन्दिर प्रदेश की जनता के साथ-साथ माता वैष्णो के तीर्थ पर आने वाले लाखों यात्रियों तथा कश्मीर-दर्शन के लिए जाने वाले पर्यटकों के लिए दर्शनीय स्थल होने के साथ-साथ जम्मू नगर की जनता के सांस्कृतिक जीवन का केन्द्र बन चुका है।

प्रस्तुत रचना में श्री रघुनाथ मन्दिर के इतिहास, मन्दिर परिसर में स्थापित शालिग्राम और मूर्त्तियों के सम्बन्ध में शास्त्र सम्मत जानकारी देने का प्रयास किया गया है।

पुस्तक की पाण्डुलिपि सुश्री प्रो० आरती शर्मा ने तैयार की है। मैं उनके प्रति आभार प्रकट करता हूं।

विनीत

डॉ० बी० के० शास्त्री

विषय सूची

डोगरा राजवंश की परम्परा और डॉ० कर्णसिंह

उत्तर भारत के प्रमुख और प्रसिद्ध देवस्थान श्री रघुनाथ मन्दिर का निर्माण जम्मू-कश्मीर के महाराजा श्री रणवीरसिंह जी ने करवाया था। महाराजा रणवीरसिंह सूर्यवंशी राजाओं की उस महान् परंपरा में से थे जिसमें रघु और राम जैसे आदर्श राजा हुए। श्री राम के लव और कुश नामक दो पुत्रों में से कुश के ज्येष्ठ पुत्र का नाम अतिथि था, जो कुश के बाद राज्य का शासक हुआ।

अतिथि के उपरान्त क्रम से निषद, अनल, नभ, पुण्डरीक, क्षेमधन्वा, देवानीक, अहीनक, पारियात्रक, देवल, वच्चक, उत्क, वज्रनाभ, शंख, युषिताश्व, विश्वसह, हिरण्यनभ, पुष्प, ध्रुवसन्धि और सुदर्शन नामक राजा हुए। सुदर्शन के दो पुत्र थे—अग्निवर्ण और अग्निगिर।[1] अग्निवर्ण राजा बना। उसके उग्र स्वभाव से खिन्न होकर उसका भाई अग्निगिर और उसके कुछ सहयोगी व निकट सम्बन्धी अयोध्या छोड़कर अजमेर में चले आए। कुछ काल तक यहाँ के पुष्कर तीर्थ पर निवास करने

---

1. (क) भागवतपुराण : स्कन्ध 9, अध्याय, 12
   (ख) विष्णुपुराण : अंश 4, अध्याय, 4
   (ग) दीवान कृपाराम; गुलाबनामा : अंग्रेजी अनुवाद; पृष्ठ 5,

के उपरान्त काँगड़ा के रास्ते शिवालिक पर्वतमाला में आकर रहने लगे। अग्निगिर अपने समूह तथा स्थानीय लोगों के शासक बन गए।

अग्निगिर का पुत्र वायुश्रव हुआ जिसके बड़े पुत्र प्रमित्र ने अपने राज्य की सीमा का विस्तार किया।[1] प्रमित्र के बाद पूर्णसिंह, लक्ष, षट्-योजन और अग्निगर्भ क्रम से राजसिंहासन पर बैठे। अग्निगर्भ के अठारह पुत्रों में से बाहुलोचन और जम्बूलोचन विशेष प्रसिद्ध हुए। बाहुलोचन ने किलाबाहु तथा बाहुनगर की स्थापना की जबकि जम्बूलोचन ने वर्त-मान जम्मू नगर को बसाया।[2]

इस प्रकार ईसा की आठवीं शताब्दी में भगवान् राम के ये वंशज शिवालिक पर्वतमाला के इस क्षेत्र में स्थायी रूप से बस गए। कुछ समय के उपरान्त तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों से विवश होकर राजा बाहुलोचन को पंजाब के राजा चद्रन्हास से युद्ध करना पड़ा। इस शस्त्र-युद्ध में बाहुलोचन मारा गया।

बाहुलोचन निस्संतान था, अतः उसके बाद उसका छोटा भाई जम्बू-लोचन राजा बना। इसी राजा ने जम्मू नगर की स्थापना की। जम्बू-लोचन के बाद धर्मकर्ण, कीर्तिकर्ण, अग्निकर्ण और शक्तिकर्ण क्रमशः सिंहासन पर बैठे। शक्तिकर्ण की पांचवीं पीढ़ी में राजा शिवप्रकाश इस देश के शासक हुए जिनके राजत्वकाल में मद्रदेश के राजा शल्य ने समूचे डोगरा देश को अपने राज्य में शामिल कर लिया और इस प्रकार मद्रदेश की सीमा पीरपंचाल तक जा पहुंची।[3] फिर लम्बे अन्तराल के बाद डोगरा राजवंश के ज्योतिप्रकाश नामक राजकुमार ने पुनः अपने राज्य पर अधिकार कर लिया। उसका पुत्र पुष्पप्रकाश जब राजा बना

---

1. गुलाबनामा : पृष्ठ, 6
2. वही : पृष्ठ 50
3. डॉ० सुखदेव सिंह चाड़क, राईज एण्ड फाल ऑफ जम्मू किंगडम, पृष्ठ 6

तो उसने मद्रराज पर आक्रमण करके उसका सिर काट लिया और नगर में भयानक रक्तपात किया।[1]

पुष्पप्रकाश ने पचास वर्ष तक राज्य किया और उसके बाद रत्नप्रकाश, भूषणप्रकाश, ब्रह्मप्रकाश, और यमप्रकाश राजा हुए। यमप्रकाश के समय पंजाब से लेकर कश्मीर तक का सारा प्रदेश डोगरा राज्य के अधीन रहा। यमप्रकाश के दो पुत्र हुए—किशोरइन्द्र और सिन्धइन्द्र। किशोरइन्द्र जम्मू के राजसिंहासन पर बैठा और उसका छोटा भाई सिन्धइन्द्र पंजाब का शासक बनाया गया।

किशोरइन्द्र के बाद इसी वंश के अजयेन्द्र, राजेन्द्र, नरेन्द्र, ब्रजेन्द्र, हरीशचन्द्र, कनकवर्ण, धातुवर्ण, तेजवर्ण क्रम से राजा बने। तेजवर्ण निस्संतान थे, अत: उन्होंने अपने भतीजे बलिकर्ण को अपना उत्तराधिकारी बनाया। बलिकर्ण के उपरांत अनेक राजा हुए जिनमें योगराय विशेष प्रसिद्ध हुए। इनके दो पुत्र थे—मलहानहन्स और सूरजहन्स। मलहानहन्स की असामयिक मृत्यु हो जाने पर योगराय ने सूरजहंस को राजा बनाया। सूरजहन्स के उपरान्त क्रम से गंगाधर, देवलधर और सरपालधर जम्मू के शासक बने। इसी के राजत्व काल में फकीर रोशनवली जम्मू में आए। गुमट के ऊपर का स्थान अपने निवास के लिए चुना। इस स्थान पर निर्मित उनकी कब्र—नौगजा कब्र नाम से प्रसिद्ध है।[2]

सरपालधर के उपरान्त क्रम से कीर्तिधर, अजयधर, विजयधर, वज्रालधर, सूरजधर, भोजदेव, अबतारदेव, जसदेव, संग्रामदेव, जगदेव, ब्रजदेव, नृसिंहदेव, अर्जुनदेव, जोधदेव और मालदेव राजगद्दी पर बैठे। मालदेव जम्मू राजवंश का बड़ा प्रतापी राजा हुआ जिसने मण्डी में सुंदर महलों का निर्माण करवाया।[3] तैमूर लंग ने इसी के राजत्व काल में

---

1. दीवान कृपारामा, गुलाबनामा : पृष्ठ 9
2. गुलाबनामा : पृष्ठ, 13
3. हचसन एण्ड वोगल, हिस्ट्री आफ पंजाब हिल स्टेट्स : पृष्ठ, 528

जम्मू पर आक्रमण किया था ।[1]

मालदेव के बाद उसका बेटा हमीरदेव राजा बना । यह राजा दिल्ली के तत्कालीन सुल्तान मुहम्मदशाह का विशेष कृपापात्र था । सुल्तान ने उसकी वीरता से प्रभावित होकर उसे 'भीमदेव' की उपाधि प्रदान की थी । हमीरदेव के उपरान्त अजयदेव, वैरमदेव और खोखारदेव क्रमशः राजसिंहासन पर बैठे । यह 1526 ई० का युग था । इब्राहीम लोधी दिल्ली का सुलतान था । बाबर ने भारत को विजित करने के लिए पंजाब पर आक्रमण किया और पानीपत के युद्ध में लोधी को परास्त कर दिल्ली पर अधिकार कर लिया ।

खोखारदेव के उपरान्त उसका पुत्र कपूरदेव राजा हुआ, जिसने सफलतापूर्वक चालीस वर्ष तक राज्य किया । इस काल में मुसलमानों का आतंक बढ़ने लगा था । ई० सन् 1545-1553 के बीच इस्लामशाह के शासन काल में जम्मू के किलाबाहु पर कब्जा किया गया था । इसके बाद यद्यपि शासन तो जम्मू के राजा ही करते रहे परन्तु उन पर दिल्ली के शासकों की प्रभुता स्थापित हो चुकी थी ।

कपूरदेव की मृत्यु के बाद जम्मू के राजा और भी दुर्बल हुए । जम्मू राज्य कपूरदेव के दो पुत्रों—जगदेव और समैलदेव में विभाजित हो गया । राजकुमार जगदेव बाहुनगर को राजधानी बनाकर शासन करने लगा और समैलदेव जम्मू का राजा बना । ई० सन् 1650 के आसपास समैलदेव के पुत्र भूपदेव का लड़का हरिदेव जम्मू का राजा हुआ जिसने फिर से इन दोनों राज्यों को एक करके जम्मू को राजधानी बनाए रखा ।

राजा हरिदेव जम्मू पर 36 वर्ष तक राज्य करने के उपरान्त मुगल सम्राट् औरंगजेब के साथ भारत के दक्षिणी प्रदेशों के विरुद्ध किए जाने वाले एक अभियान में दिवंगत हुआ ।[2] हरिदेव के बाद गजदेव और उसके

---

1. जी० सी० स्मिथ, दी रैनिंग फैमिली आफ लाहौर : पृष्ठ, 234
2. गुलाबनामा : पृष्ठ, 25

बाद ध्रुवदेव जम्मू के राजसिंहासन पर आसीन हुआ जिसने दुर्बल होते हुए मुगल आधिपत्य से जम्मू राज्य को स्वाधीन करके उसे एक शक्तिशाली राज्य के रूप में विकसित किया। ई० सन् 1703 से लेकर ई० सन् 1735 तक ध्रुवदेव ने न केवल जम्मू राज्य का विस्तार किया अपितु अपनी शक्ति के कारण वह तत्कालीन मुगल सम्राट् मुहम्मदशाह के द्वारा जम्मू के 'डोगरे इलाके' का राजा मान लिया गया।

राजा ध्रुवदेव के चार पुत्र थे—रणजीतदेव, घनसारदेव, सूरतदेव व बलवन्तसिंह। सन् 1735 ई० में ध्रुवदेव का स्वर्गवास होने पर रणजीत-देव राजसिंहासन पर बैठा और अपने पिता से भी योग्य प्रमाणित हुआ। इसके शासन में जम्मू नगर का काफी विकास हुआ, जिससे प्रसिद्धि भी हुई। रणजीतदेव की सहायता से ही अहमदशाह अब्दाली कश्मीर को अधि-कृत करने में सफल हुआ था। रणजीतदेव के बाद उसका बड़ा बेटा व्रजराज देव राजा बना। ई० सन् 1783 से 1787 तक राज्य करने के उप-रान्त स्यालकोट की भंगी मिसल के सरदारों के साथ हुए एक युद्ध में व्रजराजदेव दिवंगत हो गया। व्रजराजदेव के बाद उसका बेटा सम्पूर्णदेव राजा बनाया गया, जो उस समय केवल एक वर्ष का था। महाराजा रणजीतदेव के सबसे छोटे भाई सूरतसिंह के बेटे मियां मोटा उसके संरक्षक और राज्य के शासक बने। सम्पूर्णदेव अभी ग्यारह वर्ष का ही था कि सन् 1797 में बीमारी से उसकी मृत्यु हो गई। इन दस वर्षों में जम्मू के शासकों की काबुल के शासकों के साथ मित्रता रही, और इसके फल-स्वरूप वे सिखों के प्रभाव से बचते रहे।

सम्पूर्णदेव के बाद व्रजराजदेव के भाई दर्लालदेव के छोटे पुत्र जीत-देव को सिंहासन पर बिठाया गया जो साधारण नवयुवक था। इन दिनों पंजाब के महाराजा रणजीतसिंह जम्मू पर अपना आधिपत्य जमा चुके थे और जम्मू के राजा से नजराना लिया करते थे। राजा जीतदेव कभी-कभी नजराना भेंट कर दिया करता और कभी चुप्पी साध लेता। रणजीत-सिंह को बहाना मिल गया। उन्होंने ई० सन् 1808 में सैनिक कारवाई

के द्वारा जम्मू के राज्य को पूर्णतया अपने अधीन कर लिया और ई० सन् 1812 में इसे सिख राज्य में मिलाकर राजकुमार खड्गसिंह को जागीर के रूप में दे दिया। राजा जीतदेव राजा बना रहा। उसे जागीर और पेंशन प्रदान कर दी गई।[1]

जीतदेव ई० सन् 1822 तक जीवित रहा। उसने जम्मू राज्य के सारे अधिकार गुलाबसिंह और उसके भाइयों को दे दिए।[2]

राजा रणजीतदेव के सबसे छोटे भाई राजा सूरतसिंह के पुत्र राजा जोरावरसिंह थे। जोरावरसिंह के पुत्र राजा किशोरसिंह थे, जिनके गुलाबसिंह, ध्यानसिंह और सुचेतसिंह नामक तीन पुत्र हुए।

इस प्रकार जम्मू के डोगरा राज्य पर कुछ वर्षों तक लाहौर दरबार का सीधा शासन रहा और फिर 16 जून ई० सन् 1822 का वह शुभ दिन आया जब अपनी वीरता, साहस, प्रत्युत्पन्नमति और योग्यता के कारण राजा गुलाबसिंह पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह द्वारा अपने वंशानुगत राजसिंहासन पर अभिषिक्त किए गए।

राजा गुलाबसिंह ने ई० सन् 1839-40 में लद्दाख विजित किया और फिर प्रथम सिख युद्ध के बाद 16 मार्च, 1846 के दिन कश्मीर को प्राप्त करके जम्मू-कश्मीर राज्य की स्थापना की, जिसके वह सर्वप्रथम महाराजा हुए।

सन् 1846 ई० में जम्मू-कश्मीर के महाराजाधिराज बनने के उपरान्त महाराजा गुलाबसिंह जी ने अपनी जेब से पांच लाख रुपये भगवान् श्रीराम के नाम पर अर्पण करके 'रघुनाथ निधि' नामक कोष की स्थापना कर दी। इस कोष की राशि से प्राप्त होने वाले सूद से विभिन्न तीर्थों पर सदाव्रतों का आरम्भ, नए मन्दिरों का निर्माण, मरम्मत और प्रबन्ध, संस्कृत पाठशालाओं की स्थापना और उनकी देखरेख तथा इसी प्रकार

---

1. शहमत अली, सिखस एण्ड अफगानस : पृ०, 89-91
2. डाक्यमैंट नं० M/505, स्टेट आर्चविल लाईब्रेरी, पटियाला

के अन्य धर्मकार्य करने के निर्देश दिए गए।

धर्म सम्बन्धी इन कार्यों की देखरेख के लिए महाराजा ने राजकुमार रणवीरसिंह जी को एकमात्र ट्रस्टी नियुक्त किया।

अपने पिताश्री की इच्छा और निर्देशों के अनुसार राजकुमार रणवीरसिंह इस प्रकार के धार्मिक कार्यों में अत्यन्त रुचि लेते रहे जिससे उनका बचपन राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक वातावरण में व्यतीत होने लगा।

सन् 1856 में श्री रणवीरसिंह अपने पिता की इच्छा और आदेश से जम्मू-कश्मीर के राजसिंहासन पर बैठे। अपने जीवन में तो उन्होंने अलौकिक धर्मकार्य किए पर उनका मन चाहता था कि जिस ट्रस्ट की स्थापना उनके पिता ने की थी और जिसका वे वर्षों तक संचालन करके श्री रघुनाथ मन्दिर परिसर जैसे अनुपम मन्दिर समूह की स्थापना में सफल हुए थे; वह ट्रस्ट सदा के लिए चलता रहे और उसकी उचित प्रबन्ध व्यवस्था होती रहे। इसके लिए उन्होंने 'धर्मार्थ का विधान' 'बनवाया, जिसे 'आईने धर्मार्थ' कहा गया।

महाराजा रणवीरसिंह जी ने अनेक नए मन्दिर बनवाए, संस्कृत पाठशालाओं की स्थापना की और श्री रघुनाथ मन्दिर में महत्वपूर्ण हस्त-लिखित ग्रंथों का एक संग्रहालय बनवाया। सन् 1885 ई० में महाराजा रणवीरसिंह जी की मृत्यु के बाद उनके बड़े राजकुमार श्री प्रतापसिंह 35 वर्ष की अवस्था में सिंहासन पर आसीन हुए और साथ ही धर्मार्थ ट्रस्ट के अध्यक्ष भी बने। महाराजा प्रतापसिंह कुशल राजनीतिज्ञ, न्याय-प्रिय शासक होने के साथ-साथ अत्यन्त धार्मिक प्रकृति के भी थे। अपने पितामह तथा पिताश्री द्वारा स्थापित धार्मिक परम्परा का पालन करते हुए उन्होंने दान और पुण्य कार्य करने के कीर्तिमान स्थापित किए। श्री रघुनाथ मन्दिर परिसर में महाराजा रणवीरसिंह जी का अत्यन्त विशाल और अनुपम समाधि-मन्दिर उन्हीं की देन है। पुरमण्डल और उत्तरवाहिनी तीर्थों पर निर्माणाधीन अनेक देवालय, जिनका शिलान्यास

महाराजा रणवीरसिंह जी ने किया था, इन्हीं के राजत्वकाल में पूर्ण किए गये।

महाराजा प्रतापसिंह का निधन सितम्बर, 1925 में हुआ। उनके कोई संतान नहीं थी। अतः उनके भाई राजा अमरसिंह के लड़के राजकुमार हरिसिंह सितम्बर, 1925 ई० में सिंहासनारूढ़ हुए। उनका राजतिलक फरवरी, 1926 में हुआ। धर्मार्थ ट्रस्ट के अध्यक्ष बनने के उपरान्त इन्होंने अपने पूर्वजों द्वारा स्थापित धार्मिक परम्परा का पालन किया और सभी महत्वपूर्ण अवसरों और उत्सवों पर भगवान् श्रीराम का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए महारानी तारादेवी सहित श्री रघुनाथ मन्दिर में पधारते रहे।

सन् 1947 में भारत के एक प्रभुसत्ता सम्पन्न स्वतंत्र गणराज्य बनने पर, देश की अन्य रियासतों की तरह जम्मू-कश्मीर भी जब भारत में शामिल होने की तैयारी कर रहा था कि अचानक तभी पाकिस्तान ने आक्रमण करके बलपूर्वक जम्मू-कश्मीर को प्राप्त करना चाहा। भारतीय सेना ने पाकिस्तान को पराजित कर दिया। इस आक्रमण के फलस्वरूप हजारों हिंदू शरणार्थियों के रूप में जम्मू पहुंचे। श्रीरघुनाथ मन्दिर का परिसर शरणार्थियों से भर गया। धर्मार्थ ट्रस्ट ने अधिकांश पूंजी शरणार्थियों के आवास, भोजन और वस्त्र देने पर खर्च कर दी। यह सब कार्य महाराजा हरिसिंह जी के निर्देशन में हुआ। इससे पूर्व महाराजा हरिसिंह, 1931 ई० में, सभी मन्दिरों में हरिजनों के प्रवेश करने का आदेश भी दे चुके थे।

कुछ समय के उपरान्त राजनीतिक उथल-पुथल के कारण महाराजा हरिसिंह बम्बई चले गए। उनकी जगह 18 वर्ष के राजकुमार कर्णसिंह जम्मू-कश्मीर रियासत के रीजेंट बने।

जब वे इक्कीस वर्ष के हुए तो उन्हें इस रियासत के नए विधान के अनुसार 'सदरे रियासत' बनाया गया। और जब प्रदेश में प्रधानमन्त्री और सदरे रियासत की संज्ञाएं समाप्त कर दी गईं तो वे जम्मू-कश्मीर

के राज्यपाल के रूप में कार्य करने लगे।

डॉ० कर्णसिंह लगातार अट्ठारह वर्ष तक इस पद पर रहे और फिर ग्यारह वर्ष तक केन्द्र में मन्त्री पद पर विराजमान रहे। यद्यपि युग परिवर्तन के कारण उनका राजतिलक नहीं हुआ था पर भाग्य, पुरुषार्थ और देवकृपा से उन्होंने पूरे 29 वर्ष तक शासन किया।

सन् 1956 में महाराजा हरिसिंह जी ने एक विशेष आदेश से इन्हें धर्मार्थ ट्रस्ट का एकमात्र ट्रस्टी बना दिया। अपनी माता महारानी तारादेवी जी के धार्मिक विचारों से प्रभावित डॉ० कर्णसिंह जी ने धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में जो योगदान दिया है उसके कारण ये सदियों तक जनमानस में बने रहेंगे। श्रीरघुनाथ मन्दिर परिसर में महारानी तारादेवी धर्मशाला, हरिभवन, रणवीर यात्री भवन, दुर्गा मन्दिर, नटराज मन्दिर इत्यादि का निर्माण करवाकर इन्होंने अपने उज्ज्वल वंश की परम्परा को बनाए रखा है। माता वैष्णो देवी के यात्रियों की सुविधा के लिए प्रतापभवन और कर्णभवन नामक आधुनिक सुविधाओं से आपूर्ण धर्मशालाएं इन्हीं की देन हैं। इन निर्माण कार्यों से जहां डॉ० कर्णसिंह ने जम्मू-कश्मीर में आने वाले यात्रियों और पर्यटकों को कहीं मुफ्त और कहीं उचित दरों पर आवास की सुविधा प्रदान की है, वहीं उनके इस अभियान से धर्मार्थ ट्रस्ट की आर्थिक स्थिति में भी सुधार हुआ है।

डोगरा राजवंश की गौरवशाली परम्परा के अन्तिम राजकुमार डॉ० कर्णसिंह जी राजनीति में रुचि रखते हुए भी मुख्यत: साहित्य, संगीत, संस्कृत और संस्कृति के व्यक्ति हैं। शासकों में पाए जाने वाले अभिमान से शून्य, निर्मल चरित्र और सौम्य प्रकृति के डॉ० कर्णसिह अत्यन्त सुशिक्षित और सुसंस्कृत व्यक्ति हैं। उनका धर्म और संस्कृति के प्रति प्रेम, देश के प्रति समर्पण और विद्या के प्रति अनुराग उन्हें रघुनाथ मन्दिर के निर्माता महाराजा रणवीरसिंह जी की अनुकृति जैसा बना देता है।

श्रीरघुनाथ मन्दिर का ऐतिहासिक शिलालेख और महाराजा रणवीरसिंह

श्रीरघुनाथ मन्दिर के इतिहास का आधार महाराजा रणवीरसिंह जी द्वारा स्थापित वह शिलालेख है जिसके ठीक सामने उनका आकर्षक व्यक्तित्व वाला चित्र लगा है। इस शिलालेख के अनुसार विक्रमी संवत् 1915 में अपने राज्याभिषेक के समय महाराजा रणवीरसिंहजी ने अपने इष्टदेव भगवान् श्री रघुनाथ जी की मूर्ति के साथ-साथ अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियों की स्थापना की। उनके जीवनकाल के उपरान्त भी मन्दिर का प्रबन्ध उचित रूप से चलता रहे, इस विचार से संकल्प करके अनेक ग्राम और नगद रुपया अर्पण किया।

इस मन्दिर के अतिरिक्त महाराजा ने अपने राज्य के प्रत्येक जिले और तहसील में नए देवालयों का निर्माण करवाया और उनके सार्वकालिक प्रबन्ध के लिए बहुत सी कृषि-भूमि उनके नाम कर दी।[1]

इसके साथ-साथ भारतवर्ष के प्रसिद्ध पुण्य तीर्थों, हरिद्वार, बद्रीनारायण, वृन्दावन, काशी, प्रयाग, अयोध्या, गया, गोदावरी, रामेश्वर, द्वारिका आदि पर सदाव्रत लगाए।

महाराजा ने लोकमंगल की कामना से मन्दिर के परिसर में भोजनशाला, गौशाला, आरोग्यशाला, पाठशाला और धर्मशाला की स्थापना

---

1. शिलालेख, श्रीरघुनाथ मन्दिर

करवाई। गौशाला में गौओं की सेवा, भोजनशाला से विद्यार्थियों, पुजारियों, यात्रिओं और अतिथियों को मुफ्त भोजन, आरोग्यशाला से रोगियों को मुफ्त दवाई, पाठशाला में शास्त्री कक्षा तक मुफ्त शिक्षा और धर्मशाला में यात्रियों के निवास का प्रबन्ध किया गया।

श्री रघुनाथ मन्दिर समूह की स्थापना की पृष्ठभूमि में महाराजा के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए इस शिलालेख में कहा गया है कि एक दिन महाराजा रणवीरसिंह जी को प्रतीत हुआ कि कलियुग का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। सनातन धर्म के नियम कठिन होने के कारण साधारण जनता उससे विमुख होने लगी है। कोई ऐसा सरल उपाय किया जाए जिससे लोग अपने धर्म की ओर उन्मुख हों। इसका सबसे सरल उपाय उन्हें भगवान् की भक्ति लगा। और यह भक्ति भी आर्य जाति के उन देवताओं की जिनका वर्णन वेद, पुराण और इतिहास में अत्यन्त व्यापक रूप से हुआ है और जो आर्यजाति के जीवन का अभिन्न अंग बन गए हैं। इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने श्रीरघुनाथ मन्दिर परिसर का निर्माण करवाया।

महाराजा रणवीरसिंह जी के मत में—'यह संसार भूत, भविष्य और वर्तमान, तीनों कालों में अनित्य है। इसमें मानव-जीवन चंचल पीपल-पत्र के अग्रभाग में लटकती हुई एक जल की बूंद की तरह है। इस धरती पर बड़े-बड़े राजा-महाराजा, ऋषि और मुनि हुए हैं जिनके नाम, यश और पुरुषार्थ पुराण, इतिहास और तवारीख आदि में वर्णित हैं। वे सब अपने शुभ और अशुभ कर्मों से ही जाने जाते हैं। नहीं तो इस भूमि पर करोड़ों ऐसे लोग हो गए, जिनके आज नाम तक कोई नहीं जानता। नेक या बद किया गया कार्य ही याद रहता है। इसलिए जितना हो सके मनुष्य नेक काम करे। भवन बनवाए, विष्णु का मन्दिर, धर्मशाला, छबील जो कुछ भी हो सके, ताकि कुछ नाम बना रहे। अगर बनाने-बनवाने की शक्ति न हो तो पूजा आदि से ही परमेश्वर की भक्ति करे।'[1]

1. शिलालेख : श्री रघुनाथ मन्दिर

श्री रघुनाथ मन्दिर परिसर की स्थापना के पीछे अपनी भावना को स्पष्ट करते हुए महाराजा ने लिखा है :—

'मैंने श्री रघुनाथ मन्दिर की स्थापना और उसके सर्वकालीन प्रबन्ध के लिए जो व्यवस्था की है, इसमें लोकोपकार के अतिरिक्त मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। इस व्यवस्था को जो बिगाड़ेगा, उसे अपने धर्म की हानि करने का पाप लगेगा और जो इसकी वृद्धि करेगा उसको शुभ फल प्राप्त होगा।'[1]

शिलालेख के अनुसार भगवान् श्रीराम महाराजा रणवीरसिंह जी के इष्टदेव थे। श्रीराम के आदर्श चरित्र से वे अत्यंत प्रभावित थे। श्रीराम की तरह धर्म और नीति का आधार लेकर राज्य करने की कल्पना से उन्हें बड़ा सुख मिलता था। राम के शक्ति, शील और सौन्दर्य इस समन्वित रूप के वे पुजारी थे। राम सौन्दर्य के आगार थे, शक्ति के प्रतीक थे और शील की साक्षात् मूर्ति। जनकपुरी में तथा राम के वनगमन प्रसंग में सौन्दर्य का, सुवाहु, मारीच, विराध, खर-दूषण, रावण, कुम्भकरण आदि के दमन में शक्ति का तथा परिवार एवं जनता के साथ किए गए राम के कोमल व्यवहार में शील का परिचय मिलता है। अपनी इन विशेषताओं के कारण श्रीराम एक आदर्श मानव, आदर्श राजा और आदर्श भगवान् के रूप में प्रतिष्ठित हुए थे। व ईश्वर होते हुए भी मानव थे और मानव होते हुए भी ईश्वर।

श्रीराम की इन विशेषताओं ने युवराज रणवीरसिंह को बहुत प्रभावित किया था। इसके साथ-साथ युवराज का पारिवारिक वातावरण भी धर्म और संस्कृति से ओतप्रोत था। उनके पिताश्री महाराजा गुलाबसिंह जी भी धर्म के प्रति समर्पित थे। उन्हें भगवान् विष्णु और भगवान् शिव के प्रति विशेष लगाव था। इसी कारण राज्य प्राप्त करते ही उन्होंने उत्तरवाहिनी में गदाधर जी का जो विशाल मन्दिर बनवाया था, उसके सम्बन्ध में लिखा है कि :—

---

1. शिलालेख : श्री रघुनाथ मन्दिर

'महाराजाधिराज जम्बू-काश्मीर, तिब्बतादि श्री गुलाबसिंह जी ने जगदुपकार वासते 1898 शक संवत् में श्रीगदाधर जी का मन्दिर श्री उत्तरवाहिनी देविका में शोभित किया। अरु उसकी द्वितीय परिधि में दशावतार मन्दिर शोभित करके मुक्त द्वार, सदाव्रत अन्नाभिलाषियों वास्ते नियत करते भये।'[1]

इस मन्दिर में श्रीगदाधर (विष्णु-लक्ष्मी) जी की मूर्ति के अतिरिक्त मन्दिर की दूसरी परिक्रमा में मत्स्य, कूर्म, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम-लक्ष्मण, सीता, राधा-कृष्ण, जगन्नाथ, निष्कलंक, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, ब्रह्मा, गणेश और हनुमान जी की मूर्तियां हैं।

अपने दूसरे आराध्य भगवान् शिव के प्रति अपनी अपार श्रद्धा प्रकट करने के उद्देश्य से उन्होंने पुरमण्डल में उमापति महादेव मंदिर के प्रांगण में एक विशाल शिवपुरी की स्थापना करवाई थी। इसमें भगवान् शिव के मध्यम आकार के एक सौ इक्कीस मंदिर हैं। प्रत्येक मन्दिर में ग्यारह-ग्यारह रुद्र हैं। इस सम्बन्ध में लिखा है :—

'महाराजाधिराज जम्बू-कश्मीर तिब्बतादि अनेक देशाधीश श्री महाराजा गुलाबसिंह जी ने परोपकार वासते 1898 विक्रमादित्य में अनेक मंदिरों में शिव स्थापना कर स्वनाम स्थापित किया।'[1]

स्पष्ट है कि महाराजा गुलाबसिंह श्री विष्णु और शिव दोनों के भक्त थे, पर उनका मन विष्णु के गदाधर रूप की ओर अधिक आकर्षित था। इसके पीछे उनके आध्यात्मिक गुरु श्री प्रेमदास वैरागी का उपदेश या आदेश भी हो सकता है और श्री गदाधर भगवान् की अजेयता भी। जिस प्रकार विष्णु ने गदासुर की वज्र से भी कठोर अस्थि से निर्मित गदा से देवशत्रु हेतिरक्ष व उसकी सेना का नाश किया था, उसी प्रकार महाराजा गुलाबसिंह जी ने भगवान् गदाधर जी से प्रेरणा और आशीर्वाद लेकर अपने शस्त्रबल से छोटे से जम्मू राज्य को एक विशाल जम्मू-कश्मीर-तिब्बतादि राज्य के रूप में परिवर्तित कर लिया था। महा-

1. शिलालेख, उमापति महादेव मंदिर, पुरमंडल

राजा गुलाबसिंह जीवन भर भगवान् गदाधर जी के उपासक रहे। उत्तरवाहिनी, जम्मू और श्रीनगर में गदाधर जी के मंदिरों का निर्माण करवाया। स्वर्गारोहण से पूर्व भी उन्होंने भगवान् गदाधर जी की पूजा करके उनसे अन्तिम विदा ली थी।[1]

इस प्रकार महाराजा रणवीरसिंह जी को धार्मिक संस्कार और देवालय निर्माण में रुचि अपने पिताश्री से विरासत में मिली थी। उनका सम्पूर्ण बाल्यकाल इसी प्रकार के धार्मिक और सांस्कृतिक वातारण में व्यतीत हुआ था। इसके अतिरिक्त महाराजा गुलाबसिंह जी के संरक्षक पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह भी धार्मिक प्रवृत्ति के शासक थे। पुरमण्डल व उत्तरवाहिनी नामक तीर्थों पर उनके द्वारा की जाने वाली यात्राओं को राजकुमार रणवीरसिंह ने अपनी आंखों से देखा था। इन तीर्थों पर पंजाब केसरी द्वारा किए गए दान और पुण्य के कार्यों से भी वे प्रभावित हुए थे। इस सम्बन्ध में सन् 1838 के मार्च महीने में पंजाब केसरी द्वारा की गई यात्रा विशेष प्रसिद्ध है।[2] इस यात्रा में पंजाब केसरी, महाराजा गुलाबसिंह जी के साथ मानसर और सरूंहीसर भी गए थे। सरूंहीसर में नृसिंहदेव मंदिर में पूजा करने के उपरान्त उन्होंने बाह्मणों को वहुत-सा धन और सोना प्रदान किया था। वहाँ से जम्मू आकर महाराजा गुलाबसिंह जी के ठाकुरद्वारे में गए। पाँच सौ रुपये पुजारी को तथा पांच सौ रुपये ठाकुरद्वारे के दूसरे सेवकों को प्रदान किए।[3] महाराजा रणजीतसिंह द्वारा हरिद्वार, जगन्नाथपुरी, कांगड़ा माता, ज्वालामुखी, स्वर्णमंदिर आदि तीर्थों पर किए गए सेवाकार्यों से भी श्री रणवीरसिंह अवगत थे।[4]

इस प्रकार उस युग के दो महान् शासकों के धार्मिक व्यक्तित्व का

---

1. कृपाराम, गुलाबनामा, अंग्रेजी अनुवाद, पृष्ठ, 402
2. वी०आर० सूरी, उमदाते-उत-तवारीख : अंग्रेजी अनुवाद—पृष्ठ, 413
3. गुलाबनामा : पृष्ठ, 165
4. गुलाबनामा : पृष्ठ, 399

प्रभाव श्री रणवीरसिंह जी पर पड़ा और समय आने पर उन्होंने उन्हीं जैसा धार्मिक शासक बनने का संकल्प किया।

महाराजा बनने पर वे श्रीराम को अपना इष्टदेव मानकर चले। उनके पिताश्री की भी यही इच्छा थी।[1]

महाराजा गुलाबसिंह जी ने उत्तरवाहिनी के गदाधर मंदिर परिसर में अन्य अवतारों की मूर्तियों के साथ-साथ श्रीराम, लक्ष्मण और सीता जी की जो मूर्तियाँ स्थापित करवाई थीं, वे उन्हें अत्यन्त प्रिय लगीं। उत्तरवाहिनी के इस मंदिर में जिस प्रकार गदाधर जी को मुख्य स्थान देकर अन्य अवतारों की मूर्तियों को मंदिर की दूसरी परिक्रमा में स्थापित किया गया था, उसी प्रकार श्रीराम, लक्ष्मण और सीता जी को मुख्य स्थान देकर अन्य अवतारों की मूर्तियों को परिक्रमाओं में स्थापित करने का निर्णय करके महाराजा रणवीरसिंह जी ने श्री रघुनाथ जी के नाम पर इतना विशाल, आकर्षक और भव्य मंदिर बनवाया जो आज भी पूरे उत्तर भारत में अपनी समता नहीं रखता।

श्री रघुनाथ मन्दिर परिसर में पुराण-प्रसिद्ध विभिन्न देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियों, असुरों, राजाओं और भक्तजनों की काले और सफेद संगमरमर के शिलाखंडों पर खनित छोटी, मध्यम और बृहत् आकार की सुन्दरतम मूर्तियाँ हैं। महाराजा गुलाबसिंह और महाराजा रणवीरसिंह द्वारा बनवाए मन्दिरों में स्थापित शिलालेखों से स्पष्ट होता है कि ये दोनों महानुभाव रामायण, महाभारत और पुराण साहित्य से प्रभावित थे। इसका कारण यह था कि प्राचीन काल से ही देश की जनता में भक्ति, कर्म, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार तथा धार्मिक भावनाओं को जागृत और स्थापित करने में पुराण साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। परमात्मा, वेद-शास्त्र, स्वर्ग-नरक, पुनर्जन्म, आत्मा की अमरता, धर्म-कर्म, वर्णाश्रम व्यवस्था आदि विषय जितनी सतर्कता से पुराण साहित्य में विवेचित

---

1. विक्रमाजीत हसरत, लाईफ एण्ड टाईम आफ महाराजा रणजीतसिंह : पृ०, 201

हुए हैं, उतने अन्यत्र नहीं। हमारी संस्कृति, सभ्यता, आचार, व्यवहार आदि सब पर अन्य धार्मिक ग्रंथों की अपेक्षा पुराणों का अधिक प्रभाव है। आज कलियुग में रहते हुए भी हम भावात्मक रूप से जो प्राचीनकाल के आदर्श पात्रों से जुड़े हुए हैं, वह सब पुराण कथाओं की देन हैं। पौराणिक प्रभाव से ही श्रीराम, श्रीकृष्ण, सीता, राधा, हनुमान, गणेश, शिव-पार्वती, ध्रुव, प्रहलाद, हरिश्चन्द्र, श्रवण, नारद, विश्वामित्र, दधीचि, विभिन्न अवतार, शक्ति भगवती के अनेक नाम और रूप तथा अनेक तीर्थ हमारे सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

पुराण साहित्य में धर्म का स्वरूप सबसे प्रधान है। इस उद्देश्य के लिए विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश और सूर्य की उपासना का प्रचार किया गया। विभिन्न कल्पों में जैसी मान्यता थी, जिस देवता की उपासना को प्रधानता प्राप्त हुई थी, उसी का पुराणों में प्रतिपादन हुआ। जब पर-ब्रह्म परमात्मा एक है और सभी देवता उसी के वैभव का स्वरूप हैं तब किसी भी देवता की श्रेष्ठता के प्रतिपादन से एक की ही श्रेष्ठता निरूपित होती है। लोकरुचि भिन्न है और सभी का उपासना में अधिकार है, अतः भगवान् के विभिन्न रूपों और लीला-चरित्रों में से जिसमें जिसकी रुचि हो, उसी में सर्वश्रेष्ठता की भावना करके उपासना में प्रवृत्त होकर अपना कल्याण किया जा सकता है। पुराणों की इसी विचारधारा के आधार पर श्री रघुनाथ मंदिर परिसर में विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियों की स्थापना की गई है।

श्री रघुनाथ मन्दिर : विवरणात्मक परिचय

इस परिसर में मुख्य मंदिर दशरथ के पुत्र रघुवंश की कीर्ति को अमर करने वाले श्रीराम, उनकी पत्नी सीता तथा उनके स्नेही और सेवक लक्ष्मण का है। श्रीराम की मूर्ति काले संगमरमर की है और सीता तथा लक्ष्मण की श्वेत संगमरमर की। इस मंदिर के इर्द-गिर्द चौदह दूसरे विशाल मंदिर भी स्थापित हैं जिनमें क्रम से शेषनाग की शैया पर विश्राम करते हुए विष्णु और उनकी चरण सेवा करती हुई लक्ष्मी, गणपति गणेश, कैकेयी के पुत्र भरत, सुमित्रा के छोटे पुत्र और लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न, नृसिंह, राधा-कृष्ण, वामन, वराह, महालक्ष्मी, मत्स्य, कश्यप, विराट, भगवान् शिव और सूर्य तथा सत्यनारायण की आदमकद मूर्ति हैं। रघुनाथ जी का मन्दिर सबसे बड़ा और सबसे ऊंचा है। इस मंदिर परिसर के चारों कोनों में स्थित गणेश, राधा-कृष्ण, महालक्ष्मी और शिव के मंदिर इससे कुछ छोटे हैं तथा इन सब पर कलश हैं।

बाकी के दस मंदिर बड़े-बड़े होने पर भी ऊंचाई और विशालता में इनसे कुछ कम हैं। श्रीरघुनाथ मंदिर की पहली परिक्रमा में जय-विजय, राहु-केतु, शनिदेव, पूर्वदिशा, दक्षिणदिशा, पश्चिमदिशा और उत्तरदिशा की छोटी-छोटी मूर्तियाँ हैं। पूरी परिक्रमा संगमरमर की सफेद और काले रंग की शिलाओं से सुशोभित है।

दूसरी परिक्रमा के आरम्भ में रघुनाथ जी के मंदिर के सामने श्रीराम और सीता के परम सेवक श्री हनुमान हाथ जोड़े खड़े हैं।

हनुमान जी की इतनी विशाल और इतनी सुन्दर मूर्ति कहीं-कहीं ही देखने में आती है। यहीं से अहातों का क्रम आरम्भ होता है जो संख्या में आठ हैं। इन सब में श्रीराम की कथा से सम्बन्धित तथा अन्य पुराण वर्णित अवतारों, देवताओं, असुरों, ऋषि-मुनियों, राजाओं और भगवान् के प्रसिद्ध भक्तों की मूर्तियां हैं।

आर्य संस्कृति से सम्बन्धित किसी भी प्रसिद्ध व्यक्ति को छोड़ा नहीं गया है। अहाता नम्बर एक से लेकर अहाता नम्बर आठ तक इन मूर्तियों के नाम क्रम से इस प्रकार हैं :—

1. जीवात्मा
2. परमात्मा
3. ज्ञानात्मा
4. श्रीकृष्ण
5. श्रीबलराम
6. श्री प्रद्युम्न
7. श्री अनिरुद्ध
8. वाल हनुमान
9. दत्तात्रेय
10. विराटरूप
11. मत्स्य
12. कूर्म
13. नृसिह
14. वराह
15. हयग्रीव
16. कल्कि
17. नर-नारायण
18. सुखायण वैद्य
19. कपिलदेव
20. विक्रमादित्य
21. जनमेजय
22. पृथु
23. राजा रघु
24. सुग्रीव
25. विभीषण
26. अंगद
27. माण्डवी-भरत
28. लक्ष्मण
29. सीता और लक्ष्मण
30. राम सैनिक
31. जाम्बवन्त
32. ब्रह्मा
33. महादेव
34. इन्द्र
35. अग्नि
36. यम
37. शेषनाग
38. वरुण
39. वायु
40. ऋषिकेश

41. वाल्मीकि
42. विश्वामित्र
43. गौतम
44. मकरध्वज
45. धर्मपाल
46. अर्थदेव
47. श्रद्धादेव
48. मार्कण्डेय
49. लक्ष्मी नारायण
50. ध्रुव
51. वसिष्ठ
52. सत्यनारायण
53. भारद्वाज
54. जमदग्नि
55. अत्रि
56. जय-विजय
57. सनक
58. सनंदन
59. सनातन
60. कुमार
61. कुमुद
62. द्विविद
63. दधिवल
64. रामसैनिक
65. कौस्तुभ मणि
66. शंख
67. चक्र
68. गदा
69. पद्म
70. दुर्गा
71. कृपाचार्य
72. द्रोणाचार्य
73. राजा बलि
74. विद्याधर
75. धर्मकेतु
76. चित्रकेतु
77. हरिश्चन्द्र
78. अगस्त्य
79. प्रहलाद
80. कुबेर
81. बद्रीनाथ
82. वामदेव
83. केवट
84. भरत
85. नारायण
86. विश्वकर्मा
87. अग्निदेव
88. दुर्वासा
89. भृगु
90. शिव
91. शुकदेव
92. श्रीकृष्ण
93. शिव-पार्वती
94. रामेश्वर
95. पतंजलि
96. नारद

97. यमदूत
98. धर्मराज
99. चित्रगुप्त
100. साक्षीगोपाल
101. धर्मराज गन्धर्व
102. ग्राह
103. गज
104. मान्धाता
105. दशरथ और उनकी रानियां
106. बालि
107. भीष्म
108. कर्ण
109. जटायु
110. संपाति
111. दक्ष
112. कार्तिकेय
113. बारह सूर्य
114. वाल्मीकि
115. नटराज
116. गणेश
117. बगलामुखी देवी

इन नामों से स्पष्ट होता है कि इन मूर्तियों की स्थापना की पृष्ठ-भूमि में प्रेरणा पुराणसाहित्य, रामचरितमानस और तुलसीदास की अन्य रचनाओं की रही है। कुछ मूर्तियों को छोड़कर जिनका सम्बन्ध महाभारत के कुछ प्रसंगों के साथ है, अन्य सबका वर्णन तुलसीदास ने अपने साहित्य में किया है। कुछ मूर्तियां श्रीराम के परिवार और पूर्वजों की हैं तो कुछ उनके सेवकों, सहायकों और भक्तों की। वनवास के चौदह वर्षों में उनका मिलन जिन ऋषि-मुनियों से हुआ था अथवा सीताहरण के उपरांत लंका-विजय में जो लोग उनके सहायक हुए थे या सम्पर्क में आए थे, उनकी मूर्तियाँ भी स्थापित की गई हैं। इस सम्बन्ध में शिलालेख में लिखा है कि "महाराजा ने श्री रघुनाथ जी के मन्दिर में परित: रामतापनीयोपनिषद प्रोक्त श्री रघुनाथ जी के परिवार देवता की मूर्ति पंचापतन मूर्ति, अवतार मूर्ति और बारह लाख शालिग्राम स्थापना का हुक्म दिया।"[1]

1. शिलालेख, श्रीरघुनाथ मन्दिर, जम्मू

श्रीरघुनाथ जी के परिवार देवता

व अन्य मूर्तियों का संक्षिप्त परिचय

मन्दिर परिसर में स्थापित मूर्तियों के साथ विभिन्न पौराणिक प्रसंग जुड़े हुए हैं जो इनकी महिमा और महत्व को उजागर करने वाले हैं। सर्वप्रथम श्रीरघुनाथजी के परिवार देवता की मूर्तियों का संक्षिप्त वर्णन करके हम मन्दिर की तृतीय परिधि में स्थापित प्रमुख लोकप्रिय मूर्तियों का परिचय प्रस्तुत करेंगे। परिशिष्ट के अन्तर्गत उन कथाओं का संक्षिप्त प्रारूप भी दिया जाएगा, जिनके पात्र हमारे साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक जीवन का अंग बने हुए हैं।

श्री राम

श्री राम भगवान् श्री हरि के अवतार थे। उनके अवतरण के सम्बंध में अनेक आख्यान सुने जाते हैं। सामान्य रूप में जब-जब धर्म की हानि होती है, नीच और अभिमानी राक्षसों की संख्या बढ़ने लगती है। वे ऐसा अन्याय और अत्याचार पूर्ण व्यवहार करते हैं जिसका वर्णन करना संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में कृपानिधान प्रभु भांति-भांति के दिव्य शरीर धारण कर सज्जनों के कष्ट मिटाया करते हैं। वे असुरों को मारकर देवताओं को स्थापित करते हैं, अपने श्वासरूप वेदों की मर्यादा की रक्षा करते हैं और जगत में अपना निर्मल यश फैलाते हैं। श्री राम के

अवतार लेने का यह भी एक मुख्य कारण था ।

राम अवतार के पूर्व रावण का अत्याचार बहुत बढ़ गया था। राक्षस मनमाने ढंग से जनता और ऋषि-मुनियों को सता रहे थे । उनके डर से कहीं भी शुभ अनुष्ठान नहीं होते थे । देवता, ब्राह्मण और गुरु की प्रतिष्ठा नष्ट हो चुकी थी। न हरिभक्ति थी, न यज्ञ, तप और ज्ञान था । वेद और पुराण स्वप्न में भी सुनने को नहीं मिलते थे । रावण धर्म का इतना अधिक शत्रु हो गया था कि जो कोई धर्म, वेद और पुराण की बात करता उसको वह अत्यंत त्रास देता और देश से निकाल देता।

ऐसे समय में भगवान् श्री हरि ने रघुवंशी राजा दशरथ के घर अंशरूप से राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के रूप में जन्म लिया और अपने अद्भुत आदर्श चरित्र और अतुल पराक्रम से धरती से अन्याय और अत्याचार करने वाले धर्म के शत्रुओं का अन्त करके एक आदर्श राज्य-व्यवस्था की स्थापना की । अपने व्यक्तित्व में शक्ति, शील और सौन्दर्य की एकता के कारण श्रीराम एक आदर्श भगवान् और आदर्श मानव के रूप में स्थापित हुए ।

श्री राम धर्म की स्थापना और अधर्म के नाश के लिए अवतरित हुए थे।इसलिए उनके चरित्र में सभी धर्मों का समन्वय था । व्यक्ति का आदर्श क्या हो, यह राम के चरित्र से स्पष्ट होता है । व्यक्ति का परिवार के लोगों से कैसा व्यवहार हो, इसका आदर्श भी श्रीराम का परिवार धर्म है। पारिवारिक जीवन में वह एक आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, तथा आदर्श पति हैं। समाज एवं लोकधर्म के क्षेत्र में भी वे एक आदर्श लोकरक्षक राजा के रूप में दिखाई देते हैं।

श्री राम अपनी इन विशेषताओं के कारण आज भारत के करोड़ों हिन्दुओं के आराध्य देवता हैं। श्री रघुनाथ मन्दिर में स्थापित उनकी भव्य मूर्ति हमें उसी मार्ग पर चलने का संदेश देती है, जिस पर चलकर उन्होंने धर्म और कर्तव्य का पालन किया था ।

श्री सीता माता जी

श्री रघुनाथ जी के मुख्य मन्दिर में श्रीराम लक्ष्मण और सीताजी की संगमरमर की आदमकद मूर्तियां हैं। मध्य में भगवान् श्रीराम की काले संगमरमर की मूर्ति, वामभाग में श्री सीता जी तथा दक्षिणी भाग में श्री लक्ष्मण जी की सफेद संगमरमर की मूर्तियां हैं।

सीता के सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थों में प्रसंग मिलते हैं जिनके अनुसार सीता लक्ष्मी का अवतार थीं। ब्रह्म के विष्णुरूप ने लोककल्याण के लिए जिस प्रकार मनुष्य रूप धारण किया था तथैव उनकी माया ने भी सीता का रूप धारण किया। इस सम्बन्ध में मानस में लिखा है कि भगवान् ने मनु शतरूपा को वरदान देते हुए कहा था "तुम अवध के राजा होगे और मैं तुम्हारा पुत्र। इच्छानिर्मित मनुष्य रूप साजकर मैं तुम्हारे घर प्रकट होऊंगा। आदिशक्ति, यह मेरी स्वरूपभूता माया भी, जिसने जगत को उत्पन्न किया है, अवतार लेंगी।"[1] राजा मनु और शतरूपा को जब भगवान् का दर्शन हुआ तो उन्होंने देखा कि भगवान् के वाम भाग में सदा अनुकूल रहने वाली जगत की मूलकारणरूपा आदिशक्ति श्री जानकी सुशोभित हैं।[2]

सीता जी साक्षात् जगद्माता कमला हैं। इन्होंने भी लीला करने के लिए मानव रूप धारण किया था। ये जगद्माता देवत्व में देवशरीर

---

1. इच्छामय नरवेष सँवारे।
   होइहउ प्रकट निकेत तुम्हारे॥
   आदिशक्ति जेहि जग उपजाया।
   सोह अवतरिहि मोरि यह माया॥
   —रामचरितमानस, बालकाण्ड, 151 : 1-2
2. वाम भाग सोवति अनुकूला।
   आदिशक्ति छवि निधि जगमूला।
   —रामचरितमानस बालकाण्ड : 147

वाली और मनुषत्व में मानवी हैं। ये भगवान् विष्णु की देह के अनुरूप देह धारण करती हैं।

संसार के स्वामी देवाधिदेव श्री विष्णु भगवान् जब-जब अवतार धारण करते हैं तब-तब लक्ष्मी जी उनके साथ रहती हैं। जब श्रीहरि आदित्यरूप हुए तो वे कमल से उत्पन्न होकर कमला कहलाईं। जब वे परशुराम के रूप में अवतरित हुए तो लक्ष्मी जी ने पृथ्वी का रूप धारण किया। श्री विष्णु द्वारा राम का अवतार लेने पर ये सीता जी हुई तथा कृष्ण अवतार में रुक्मिणी बनीं। इसी प्रकार श्री विष्णु के अन्य अवतारों में भी लक्ष्मी जी भगवान् विष्णु से कभी पृथक नहीं होती। भगवान् के देवरूप होने पर ये दिव्य शरीर धारण करती हैं और मनुष्य रूप होने पर मानवीरूप में प्रकट होती हैं। विष्णु भगवान् के शरीर के अनुरूप ही ये अपना शरीर भी बना लेती हैं।[1]

सीता जी मूल प्रकृति हैं। वही लक्ष्मी और श्री भी हैं।[2] यही महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती के रूप में असुरों का नाश करने वाली हैं। रावण की सभा में श्री हनुमान जी ने कहा था—

हे रावण ! जिन्हें तुम सीता समझते हो, जो आज तुम्हारे घर में कैद

---

1. एवं यदा जगत्स्वामी देवदेवो जनार्दना:।
अवतारं करोत्येषा तदा श्रीस्तत् सहायिनी ॥
पुनश्च पद्मा दुत्पन्ना आदित्योऽभूद यदा हरि:।
यदा तु भार्गवोराम: तदाभूद धरणी त्वियम् ॥
राघवत्वे ऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्ण जन्मनि।
अन्येषु चावतारेषू विष्णुरेषाणपायिनी ॥
देवत्वे देव देहेयं मनुष्त्वे च मानुषी।
विष्णो देहानुरूपा वै करोत्येषा त्मनस्तनुम् ॥
—विष्णुपुराण—1/9/142-145

2. श्रीरिति लक्ष्मीरिति लक्ष्यामणा भवतीति विज्ञापते।
—सीतोपनिषद अनुवाक—2

हैं, उन्हें तुम कालरात्रि ही समझो। वे लंका का नाश कर देंगी।[1] सीता शक्ति हैं और श्री राम शक्तिमान् हैं। श्रीराम परब्रह्म परमात्मा हैं तो सीता उनकी पराशक्ति हैं। नारद के वचन को सत्य प्रमाणित करने के लिए ही भगवान् पराशक्ति समेत राम और सीता के रूप में अवतरित हुए थे।[2]

सीता के जन्म से सम्बन्धित अनेक प्रसंग मिलते हैं :

एक बार गन्धर्वराज तुंबरु और नारद भगवान् विष्णु के महल में गए। वहां संगीत का कार्यक्रम चल रहा था। लक्ष्मी की दासियों ने गानविद्या में प्रवीण तुंबरु को तो अन्दर जाने दिया पर नारद को वहीं रोक दिया। नारद ने इसे अपना अपमान समझा और लक्ष्मी को राक्षसी होने का शाप दिया। लक्ष्मी को जब पता चला तो उसने नारद से कहा कि वे उनके शाप का फल भोगने को तत्पर हैं पर वे चाहती हैं कि उनका जन्म उस राक्षसी के गर्भ से हो जो मुनियों के रक्त से भरे हुए कलश को अपनी इच्छा से पी ले। लक्ष्मी ने सोचा, ऐसा होना असंभव है।

उस समय दण्डकवन में रावण का राज्य था। इस वन में अनेक तपस्वी और तेजस्वी ऋषि-मुनियों के आश्रम थे। वे तप से शक्ति प्राप्त करते थे। रावण ने भी तप से ब्रह्मा को प्रसन्न करके यह वर प्राप्त कर लिया कि उसकी मृत्यु तभी संभव हो जब वह अपनी कन्या से ही रति की कामना करे।

इसके बाद रावण ने दण्डकवन में रहने वाले ऋषि-मुनियों को सताने की इच्छा से 'कर' के रूप में थोड़ा-थोड़ा रक्त लेकर एक कलश में इकट्ठा

---

1. यां सीतेत्यभिजानासि क्षेयं तिष्ठति ते गृहे।
   कालरात्रीति तां विद्धि सर्वलंका विनाशिनीम ।।

   ---वा० रा०, सुन्दरकाण्ड, 52/34,

2. नारद वचन सत्य सब करिहौं।
   पराशक्ति समेत अवतरिहौं ।।

   —रामचरितमानस : बालकाण्ड 186/3

करना आरंभ किया। इन्हीं दिनों इसी वन में रहने वाले गत्समद नामक ऋषि ने लक्ष्मी को अपनी पुत्री के रूप में प्राप्त करने के लिए यज्ञ करना आरंभ किया। यज्ञ की भूमि में मंत्रों से दीक्षित करके दूध से भरा हुआ एक कलश स्थापित कर दिया। एक दिन रावण ने मुनि की अनुपस्थिति में इस कलश को उठा लिया और उसमें मुनियों के शरीर से प्राप्त रक्त को डालकर लंका में ले गया।

लंका में वह यक्ष और गन्धर्व कन्याओं के साथ हास-विलास में लीन हो गया। रावण के इस आचरण से दुखी होकर मन्दोदरी ने विष से भी भयंकर उस रक्त को पी लिया। उससे मन्दोदरी मरी नहीं, गर्भवती हो गई। रावण ने एक वर्ष से उसकी सुधि तक न ली थी। अत: इस गर्भ से वह घबरा गई। पाप से बचने के लिए उसने तीर्थयात्रा के बहाने कुरुक्षेत्र में जाकर गर्भपात किया और उसे पृथ्वी में गाड़ दिया।

इसी कुरुक्षेत्र में यज्ञ की कामना से राजा जनक ने सोने का हल जोता। इस हल की फाल से सीता पृथ्वी से बाहर आ गई। राजा जनक ने उसे अपनी पुत्री की तरह पाल-पोसकर, और फिर बड़ी होने पर श्रीराम के साथ उसका विवाह कर दिया।[1]

श्री लक्ष्मण जी

लक्ष्मण महाराजा दशरथ और उनकी तीसरी रानी सुमित्रा के पुत्र थे। अच्छे-अच्छे लक्षणों से सम्पन्न होने के कारण इनका नाम लक्ष्मण रखा गया था। शत्रुघ्न इनके छोटे भाई थे। अपने वैमात्रेय बड़े भाई राम के साथ इन्हें इतना लगाव था कि वे प्राय: दिन और रात उनके साथ ही रहते। बड़े होने पर उनकी राम के प्रति भक्ति और अनुराग

---

1. वाल्मीकि रामायण : बालकाण्ड, सर्ग 66—अ० 13-15
2. अदभुत्‌रामायण : सर्ग 8, अ०6
3. ब्रह्मवैवर्त पुराण : प्रकृतिखण्ड अ० 14
4. देवी भागवत : स्कन्ध 9, अ० 16

में वृद्धि होती गई और जब राम को वनवास मिला तो वे भी अपनी नवविवाहिता पत्नी उर्मिला को छोड़कर चौदह वर्ष के लिए वन में अपने भाई और भावज की सेवा करने के उद्देश्य से उनके साथ हो लिए।

राम के अनन्य साथी और सहयोगी होने के कारण ये राम को भी प्राणप्रिय थे। जहां राम जाते लक्ष्मण उनके साथ हो लेते। सो जाने पर उनके पैरों के समीप बैठते। आजन्म छाया की तरह श्रीराम के अनुयायी रहे। राजमहलों और वन की कुटिया में इनके लिए कोई अन्तर नहीं था। जिस स्थान पर श्रीराम विराजते, वही इनके लिए अयोध्या थी। इनकी भ्रातृभक्ति अनुपम थी। श्रीराम द्वारा दिए गए प्रसाद को खाए बिना इनकी तृप्ति नहीं होती थी। वन में ताड़का आदि राक्षसियों का वध करने के समय श्री लक्ष्मण, श्रीराम के साथ थे। इस काल में वन के मार्ग से जाते समय दोनों भाइयों को भूख से कष्ट होता था। यह देखकर मुनि विश्वामित्र ने उन्हें एक ऐसा मन्त्र सिखाया था, जिससे भूख से होनेवाले कष्ट की उन्हें अनुभूति नहीं होती थी।

धनुषयज्ञ के बाद जब राम का सीता से विवाह हुआ तो राजा जनक की एक कन्या उर्मिला से इनका विवाह हुआ। लक्ष्मण अल्पभाषी थे। जरूरी होने पर ही बोला करते थे। राम के अभिषेक का संवाद पाकर भी वे मौन ही रहे थे। पर अल्पभाषी होने पर भी लक्ष्मण श्रीराम पर अन्याय करने वालों को क्षमा नहीं कर सकते थे। कैकेयी ने जब राम को वन में जाने की आज्ञा दी तो राम तो प्रसन्न हुए पर लक्ष्मणजी को इस अन्याय पर बड़ा क्रोध हुआ था। वे आंसुओं से भरी आंखों से श्रीराम के पीछे-पीछे चले थे। क्रोध में उन्होंने पूरी अयोध्या को नष्ट करने की इच्छा की थी।

लक्ष्मण राम के साथ वनवास के लिए चल पड़े। इस आत्मत्यागी मनस्वी के लिए किसी ने विलाप नहीं किया, माता सुमित्रा ने भी नहीं। और पत्नी से तो लक्ष्मण ने वचन ले लिया था कि वह उसे मुस्कराते चेहरे से विदा करेगी।

वन में वास करते समय लक्ष्मण ने अरण्य जीवन की सारी कठोरता

को मुदित मन से अपना लिया था। रात और दिन श्रीराम और सीता की सेवा में उन्हें आनन्द की अनुभूति होती थी। मौन संन्यासी लक्ष्मण, त्याग और सेवाभाव की मूर्ति बन गए थे। मिट्टी खोदकर पर्व-शाला बनाना, वन से लकड़ी काटकर लाना, गोबर के उपले तैयार करके आग जलाने की व्यवस्था करना, जलाशय से जल लाना, कोमल पत्तों की शय्या तैयार करना, कन्द, मूल, फल आदि का इन्तजाम करना, लक्ष्मण का दैनिक कार्यक्रम था।

एक दिन काले सांपों से भरे हुए वन में भूख और मार्ग की थकावट से सीता का उदास चेहरा देखकर राम बड़े दुःखी हुए। उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि वह सीता के साथ अयोध्या को लौट जाए और माताओं की सेवा करे।

इस पर लक्ष्मण ने कहा—"मैं माता-पिता, उर्मिला, शत्रुघ्न यहां तक कि स्वर्ग को भी आप से बढ़कर नहीं समझता।"

वनवास के दिनों में हर कठिन घड़ी में लक्ष्मण छाया की तरह राम के साथ रहकर उनकी सेवा और सहायता करता है। शूर्पणखा ने राम से प्रेम की भीख मांगी तो राम ने उसे लक्ष्मण के पास भेज दिया। लक्ष्मण ने उसे निर्लज्जता का दण्ड दिया। कवन्ध राक्षस और भक्त जटायु की मृत्यु के बाद उनके समाधिस्थल खोदकर लक्ष्मण ने उनका सत्कार किया।

बालि के वध के उपरान्त जब सुग्रीव भोग-विलास में लिप्त होकर सीता की खोज के काम को भूल गया तो लक्ष्मण ने भयंकर परिणाम की चेतावनी देकर उसे सावधान किया था। लंका के युद्ध में लक्ष्मण ने अपनी शक्ति, शूरवीरता और निर्भयता का प्रमाण दिया था। मेघनाद की शक्ति से मूर्छित लक्ष्मण को देखकर विलाप करते हुए राम ने कहा था :—

तुम ने जिस प्रकार वनवास में आते समय मेरा अनुगमन किया था, उसी प्रकार मैं भी यमलोक तक तुम्हारा अनुगमन करूंगा। तुम्हारे बिना मैं जीवित नहीं रह सकता। देश-देश में स्त्री और मित्र मिल

सकता है, पर ऐसा कोई देश देखने में नहीं आता जहां तुम्हारे समान भाई, मन्त्री और सहायक मिल सकता हो।

राम के सहायक सेनापति के रूप में सेना-संचालन करने के साथ-साथ लक्ष्मण ने महाशक्तिशाली रावणसुत मेघनाद का वध भी किया था। मेघनाद को वर था कि उसे वही मार सकेगा जो चौदह वर्ष तक अनाहारी और ब्रह्मचारी रहा हो। लक्ष्मण ने वनवास काल में इस व्रत का पालन किया था। ताड़का वध के पूर्व, मार्ग की भूख को शान्त करने के लिए ऋषि विश्वामित्र ने जो मन्त्र बताया था, वह भूख के क्लेश को मिटाने में सहायक रहा था।

लक्ष्मण ने सदा श्रीराम की न्याय-अन्याय संगत आज्ञा का पालन किया। कभी अपना मुख नहीं खोला। सीता की अग्निपरीक्षा के लिए चिता तैयार करने का काम भी चुपचाप किया। राम के अयोध्या का राजा बनने पर शासन में उनकी सहायता करने लगा। राम के कहने पर निर्दोष सीता को चुपचाप वन में छोड़ आया। ऐसा लगता है कि अपने भाई के प्यार में वह अपने-आपको पूर्ण रूप से भूल चुका था। लक्ष्मण के आचरण को देखकर आज भी कहा जाता है कि राम ने तो इस धरती पर अनेक बार जन्म लिया पर लक्ष्मण जैसा भाई फिर पैदा नहीं हुआ।

श्री हनुमान जी

नारद के वचन को सत्य प्रमाणित करने के लिए भगवान् ने पराशक्ति समेत राम और सीता के रूप में अवतरित होने की बात कही थी।[1] इन्हीं ब्रह्म राम और आदिशक्ति सीता के कार्य करने के लिए ही हनुमान जी का जन्म हुआ था।[2] इस सम्बन्ध में कुछ पौराणिक प्रसंग इस प्रकार हैं :

---

1. नारद वचन सत्य सब करिहौं।
   पराशक्ति समेत अवतरिहौं॥ —रामचरितमानस : 29/3
2. रामकाज लगी तब अवतारा। —वही, सुन्दरकाण्ड

चैत्रमास के शुक्लपक्ष की पूर्णिमा को मंगलवार के दिन भगवान् शिव, भगवान् श्रीराम की लीला को देखने के लिए तथा उसमें सहायता करने के लिए अपने अंश ग्यारहवें रूद्र से माता अंजना के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। अंजना अपने पूर्वजन्म में पुञ्जिकस्थला नाम की राजा इन्द्र की अप्सरा थी। वह अत्यंत सुन्दर होने के साथ-साथ चंचल भी थी। एक बार उसने एक तपस्वी ऋषि का उपहास कर दिया। ऋषि ने क्रोध में आकर उसे शाप देते हुए कहा—'वानरी की तरह चंचलता करने वाली तू वानरी हो जा!' ऋषि के शाप से भयभीत अप्सरा ने जब उनके चरणों पर गिरकर दया की भीख मांगी तो ऋषि ने कहा कि उनका शाप तो टल नहीं सकता, परन्तु वह अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने में समर्थ होगी। वह जब चाहेगी, वानरी और मानवी के रूप में रह सकेगी।

इसके बाद उस अप्सरा ने शाप के कारण वानरयोनि में वानरों के राजा कुंजर की पुत्री के रूप में जन्म लिया। कुंजर की इस पुत्री का नाम अंजना रखा गया। अंजना का विवाह वानरराज केसरी के साथ हुआ। बहुत काल बीत जाने पर भी जब अंजना को कोई संतान न हुई तो उसने तप से शिव को प्रसन्न करके योग्यतम पुत्र प्राप्त होने का वरदान प्राप्त किया। उसे वर देते समय भगवान् शिव ने कहा :—

"ग्यारह रूद्रों में से मेरा अंश ग्यारहवां रूद्र ही तुम्हारे पुत्र के रूप में प्रकट होगा। तुम मन्त्र ग्रहण करो। पवन देवता तुम्हें प्रसाद देंगे जिससे तुम्हें सर्वगुण सम्पन्न पुत्र की प्राप्ति होगी।"

भगवान् शिव के अन्तर्धान होने के बाद अंजना अंजली पसारे शिव के द्वारा दिए गए मन्त्र का जप करने लगी।

तभी एक अपूर्व घटना घटी। उसी समय अयोध्या के राजा दशरथ द्वारा पुत्र प्राप्ति के लिए किया गया यज्ञ समाप्त हुआ। अग्नि देवता ने प्रकट होकर राजा को चरु देते हुए कहा कि वह इस चरु को रानियों में यथाक्रम बांट दे। राजा दशरथ ने चरु का आधा भाग रानी कौशल्या को दिया। शेष आधे के दो भाग किए। इनमें से एक भाग कैकेयी को

दिया। शेष चरु को फिर दो भागों में बांटकर उनको कौशल्या और कैकेयी की सहमति से सुमित्रा को दे दिया। कैकेयी हाथ में चरु लेकर उसे खाने का विचार कर ही रही थी कि अचानक आकाश से एक चील झपटकर कुछ चरु अपनी चोंच से उठाकर आकाश में उड़ गई।[1]

इससे पूर्व प्रसंगवश पवन देवता भी अंजना को अपने समान पुत्र प्राप्ति का वर दे चुके थे। उचित अवसर जानकर उन्होंने भी लीला की। अचानक आंधी चलने लगी। चील का शरीर सिकुड़ने लगा और चरु उसकी चोंच से गिर गया। पवन देवता पहले से ही तैयार थे। उन्होंने चरु को अंजना की अंजली में डाल दिया। भगवान् शिव के आदेश को स्मरण कर अंजना ने उस चरु को खा लिया और वह गर्भवर्ती हो गई।

उपयुक्त समय आने पर अंजना ने पुत्र को जन्म दिया। माता-पिता अनुरागपूर्वक उसका पालन-पोषण करने लगे। एक दिन प्रातः केसरी कहीं बाहर गए। अंजना भी बालक को पालने में लिटाकर वन में फल-फूल लेने चली गई। बालक हनुमान को भूख लगी तो वे रोने लगे। उस समय सूर्य उदय हो रहा था। उन्होंने सूर्य के बिम्ब को लाल रंग का फल समझा। वे उछले और पवनवेग से आकाश में उड़ने लगे। पवनदेव ने अपने पुत्र को सूर्य की ओर जाते देखा तो वे उसे सूर्य के तेज से बचाने के लिए बर्फ के समान शीतल होकर, उसके साथ-साथ चलने लगे। सूर्य को समझते देर न लगी कि स्वयं भगवान् शंकर ही उस बालक के रूप में उनके पास आ रहे हैं। उनकी आग के समान किरणें शान्त हो गईं।

उस दिन अमावस्या थी। उसी समय राहुदेवता जब सूर्य को ग्रसने के लिए आया तो बालक ने उसे ही पकड़ लिया। राहु द्वारा बचाओ-बचाओ का शोर किए जाने पर देवराज इन्द्र राहु की सहायता को आगे बढ़े। बालक ने इन्द्र के ऐरावत हाथी को देखा तो वह उसे एक खिलौना

---

1. आनन्द रामायण, सार० 1/107

समझकर उसे पकड़ने के लिए आगे बढ़ा। इन्द्र ने डर कर अपनी रक्षा के लिए बालक पर अपने वज्र से प्रहार कर दिया। वज्र बालक की हनु (ठोड़ी) में लगा। उसकी हनु टूट गई और वह छटपटाता हुआ पर्वत की चोटी पर गिरकर बेहोश हो गया। अपने पुत्र की यह दशा देखकर पवन देवता बड़े दुखी हुए। उन्होंने बेहोश बालक को अपनी गोद में लिया और पर्वत की गुफा में बैठ गए और अपनी गति रोक दी।

जब सभी प्राणियों में श्वास आदि का संचार रुक गया तो प्राण-संकट से भयभीत देवता ब्रह्मा के साथ पवन देवता के पास पहुंचे। पवन देवता ने उठकर ब्रह्मा को प्रणाम किया। ब्रह्मा ने बालक पर हाथ फेरकर उसकी बेहोशी दूर कर दी और उसे स्वस्थ कर दिया। अपने पुत्र को स्वस्थ देखकर पवन देवता फिर बहने लगे और त्रिलोकी को जीवनदान मिला। ब्रह्मा ने संतुष्ट होकर स्वयं भी बालक को वरदान दिया तथा यह कहकर कि वह बालक भविष्य में देवकार्य करेगा अन्य देवताओं को भी वैसा ही करने का आदेश दिया। सबसे पहले इन्द्र ने कहा—"मेरे हाथ से छूटे हुए वज्र से इस बालक की हनु टूट गई थी, इसलिए इसका नाम हनुमान होगा, तथा इसका शरीर मेरे वज्र से भी अधिक कठोर होगा।"[1] इसके उपरान्त सूर्य, वरुण, यम, कुबेर, विश्वकर्मा आदि ने भी बालक को वर प्रदान किए।

हनुमान जी कहीं भगवान् शिव के अंशरूप में और कहीं शिव के रूप में वर्णित किए गए हैं। शिवपुराण के अनुसार श्रीराम के कार्य की सफलता के लिए ही शिव ने हनुमान का रूप धारण किया था। दानवों को मोह में डालने के लिए जब विष्णु ने मोहनी रूप धारण किया तब उस रूप को देखकर शिव का वीर्य स्खलित हो गया। उस वीर्य को

---

1. मत्करोत्सृष्ट वज्रेण हनुरस्य यथा हतः।
नाम्ना वै कपि शार्दूलो भविता हनुमानिति॥
—वा० रा० 7/36/11

निकाल दे, यह सोच भगवान् विष्णु वामन रूप में यज्ञभूमि में ही बलि के पास गये। बलि उनके तेज पर मुग्ध हो गया और उसने उनकी पूजा करके वर माँगने को कहा। गुरु शुक्राचार्य ने वामन का रहस्य बलि को बताया और उसे दान देने से रोकने की चेष्टा की, पर बलि न माना।

वामन ने तीन पग भूमि दान में मांगी। बलि ने जल लेकर तीन पग भूमि दान कर दी। वामन ने तत्काल विराट रूप धारण कर लिया। एक पग से पृथ्वी, दूसरे से स्वर्गादि लोक नाप लिए और जब तीसरे पग के लिए कुछ न बचा तो बलि ने एक पैर के बदले अपना शरीर नपा दिया। तब भगवान् ने उसे बन्दी बनाया। प्रह्लाद की प्रार्थना पर उसे बंधनमुक्त करके पाताल का राज्य दे दिया।

वामन और बलि का यह आख्यान सारे भारत में बहुत प्रसिद्ध है।

महालक्ष्मी

श्रीरघुनाथ मन्दिर परिसर में माता महालक्ष्मी के मन्दिर में मुख्य मूर्ति माता महालक्ष्मी की है, पर उनके अतिरिक्त माता के नौ अन्य रूपों की मूर्तियां भी स्थापित की गई हैं। इन्हें नवदुर्गा कहा जाता है। शास्त्र के अनुसार परमात्मा की जो नानाविध शक्तियां हैं,[1] उनमें अहंता नाम की भी एक शक्ति है। वही महालक्ष्मी है। एक स्थान पर स्वयं महालक्ष्मी ने इन्द्र से कहा है कि उस परब्रह्म की, जो चन्द्रमा की चाँदनी की तरह समस्त अवस्थाओं में साथ देने वाली परमशक्ति है, वह सनातनी शक्ति मैं ही हूं।[2] मेरा दूसरा नाम नारायणी भी है। मैं नित्य, निर्दोष, सीमारहित, कल्याण गुणों वाली, नारायणी नाम की वैष्णवी परासत्ता हूं।[3]

---

1. श्वेताश्वरोपनिषद : 6/8
2. लक्ष्मीतन्त्र : 2/11/12
3. लक्ष्मीतन्त्र : 3/1

वराह शिशु निकाला, और ब्रह्मा जी के देखते-देखते वह क्षण-क्षण में ही बड़ा होकर हाथी के बराबर हो गया। ब्रह्मा जी और मरीचि आदि मुनि-जन अभी उसके बारे में सोच ही रहे थे कि वह पर्वताकार होकर गर्जने लगा और जल में प्रविष्ट हो गया।

अपने तेज खुरों से जल को चीरते हुए, अपार जलराशि के उस पार रसातल में उस वराह ने समस्त जीवों की आश्रयभूता पृथ्वी को देखा। फिर वह जल में डूबी हुई पृथ्वी को अपनी दाढ़ों पर उठाकर रसातल के ऊपर आने लगा। जल से बाहर आते समय उसके मार्ग में, महापराक्रमी हिरण्याक्ष ने जल के भीतर ही गदा से उस पर आक्रमण किया। इससे क्रोधित हो वराह ने हिरण्याक्ष को मार दिया, और अपने सफेद दांतों की नोक पर पृथ्वी को धारण कर बाहर निकाला।

वराह के उस रूप को देखकर, ब्रह्मा, मरीचि आदि को निश्चय हो गया कि यह स्वयं भगवान् ही हैं। तब वे हाथ जोड़कर वेद-वाक्यों से उनकी स्तुति करने लगे। इसके पश्चात् भगवान् वराह ने अपने खुरों से जल को स्तंभित कर, उस पर पृथ्वी को स्थापित कर दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गए। कहीं-कहीं यह भी लिखा है कि अपने अंधक नामक पुत्र के राज्य के लिए हिरण्याक्ष पृथ्वी को पाताल में ले गया था। इसी कारण वह भगवान् विष्णु से मारा गया।

वामन-बलि

बलि प्रह्लाद का पौत्र और विरोचन का पुत्र था। विरोचन के बाद उसने देवताओं को जीतकर, स्वर्ग पर अधिकार कर लिया। इस पर देवमाता अदिति ने व्रत, तप आदि से भगवान् विष्णु को प्रसन्न करके, यह वचन ले लिया कि वे उसके पुत्र के रूप में प्रकट होंगे। इसी बीच बलि ने और अधिक शक्ति प्राप्त करने की इच्छा से, एक यज्ञ करना आरम्भ किया।

यज्ञ पूर्ण करके, कहीं बलि सदा के लिए देवताओं को स्वर्ग से न

तुम्हारा संयोग प्राप्त करके ही चेष्टावान होता हूं। तुम्हारे बिना मैं कुछ नहीं कर सकता। अतः तुम ब्रज में वृषभानु के घर पधारो। वृषभानु की पत्नी कलावती लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न हुई है। तुम उन्हीं की पुत्री बनो। मैं बालक रूप में वहाँ आकर तुम्हें प्राप्त करूंगा। मेरे भूमि पर स्थित होते ही पिता जी मुझे गोकुल में पहुंचा देंगे। वास्तव में कंस के भय का बहाना लेकर मैं तुम्हारे लिए ही गोकुल में आऊंगा। मेरे वरदान से तुम्हें समय पर मेरी स्मृति होगी। और मैं तुम्हारे साथ वृन्दावन में स्वछन्द विहार करूंगा।"

इसके अनन्तर श्रीहरि मथुरा जा पहुंचे और देवकी के समक्ष प्रकट होकर कहा—

"मैं तपस्या के फल से ही इस समय तुम्हारा पुत्र हुआ हूं। पूर्व जन्म में तुम दोनों ने कश्यप और अदिति के रूप में मेरी आराधना करके, मुझसे मेरे समान पुत्र माँगा था। चूंकि मेरे समान दूसरा है नहीं, अतः मैं स्वयं ही आपके पुत्रभाव से प्राप्त हुआ हूं।"

इसके बाद मूल प्रकृति ईश्वरी राधा के रूप में और श्रीहरि कृष्ण के रूप में अवतरित हुए, और लोकमंगल तथा लोकरंजन के लिए उन्होंने अद्भुत लीलाएं कीं।

वराह

एक बार जब स्वायम्भुव मनु ने ब्रह्मा से कहा कि सब जीवों का निवासस्थान पृथ्वी चूँकि जल में डूब गई है, अतः उनकी भावी प्रजा अब कहाँ रहेगी, ब्रह्मा ने स्वयं ही विराट रूप धारण करके पृथ्वी का उद्धार किया था।

अन्यत्र प्रसंग है कि हिरण्याक्ष पृथ्वी को उठाकर जल में ले गया था। पृथ्वी को अथाह जल में डूबी देखकर ब्रह्मा विचारमग्न हो गये कि इसे मैं कैसे निकालूं? उन्होंने विष्णु का स्मरण किया। तभी अकस्मात् उनके नासाछिद्र से अंगूठे के बराबर के आकार का एक

राधा-कृष्ण

श्रीराम की तरह श्रीकृष्ण भी भगवान् विष्णु का अवतार थे, जिन्होंने धर्म की स्थापना और दुष्कर्मियों के विनाश के लिए इस धरती पर अवतरित होकर अद्‌भुत लीलाएं की थीं। रामावतार में शक्ति सीता के रूप में उनके साथ थीं तो कृष्णावतार में उसने राधा का रूप धारण किया था। संसार के स्वामी श्री विष्णु जब-जब अवतार धारण करते हैं तब-तब उनकी शक्ति भी उनके साथ रहती है। वह विष्णु से कभी पृथक् नही होतीं। भगवान् के देवरूप होने पर यह दिव्य शरीर धारण करती हैं, और मनुष्य रूप होने पर मानवी रूप में प्रकट होती हैं। विष्णु भगवान् के शरीर के अनुरूप ही यह अपना शरीर भी बना लेती हैं।[1]

द्वापर युग में जब पृथ्वी असुरों से आक्रान्त हो गई तो वह संतप्त देवताओं को साथ लेकर ब्रह्मा जी के पास गई। सारा वृत्त जानकर ब्रह्मा उनको शिव के पास ले गए। ब्रह्मा और शिव ने कुछ परामर्श किया। पृथ्वी और देवताओं को लौटने का आदेश देकर, वे दोनों विष्णु के पास पहुंचे। भक्ति भाव से प्रणाम करके उन्हें समस्या से अवगत करवाया।

विष्णु ने उनसे कहा कि वे शीघ्र ही अपनी शक्ति के साथ अवतरित होकर धरती और देवताओं का संकट दूर करेंगे। फिर उन्होंने देवी-देवताओं से व्रज में जाकर अनेक रूपों में अवतरित होने का आदेश दिया। अन्त में अपनी शक्ति मूल प्रकृति से कहा—

"तुम गोकुल में अयोनिजा रूप में प्रकट होओगी। मैं भी अयोनिज रूप में ही अपने-आपको प्रकट करूंगा। तुम मूल प्रकृति ईश्वरी हो। मैं

---

1. एवं यदा जगत्स्वामी देव देवो जनार्दनः।
   अवतारं करोत्येषा तदा श्री स्ततसहापिनी॥
   देवत्वे देव देहेयं मनुषत्वे च मनुषी।
   विद्धणोदेहानुरूपां वै करोत्येषात्मनस्तनुम्॥

—विष्णुपुराण : 1/9

की शुक्ला—चतुर्दशी तिथि में नृसिंहदेव अवतरित हुए थे।

हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष पूर्व जन्म में भगवान् विष्णु के जय और विजय नामक सेवक थे। उन्हें सनकादि के शाप से राक्षस होना पड़ा था। दूसरे जन्म में वे पिता कश्यप और माता दिति के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए। एक बार जब हिरण्याक्ष पृथ्वी को ही पाताल में ले जाने लगा तो उसे वराह-रूप विष्णु ने मार दिया। अपने भाई की मृत्यु का समाचार सुनकर हिरण्यकश्यप को बड़ा दुख हुआ। उसने शक्ति पाने के लिए घोर तप करके ब्रह्मा से यह वर प्राप्त कर लिया कि वह किसी भी मानव, देवता, राक्षस-पिशाच आदि से न मारा जाए। किसी के शाप से भी उसकी मृत्यु न हो। न किसी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र से, न दिन में, न रात में, न जल-थल व आकाश में उसकी मृत्यु न हो। वरप्राप्त हिरण्यकश्यप देव और दैत्यों का स्वामी बन गया। एक बार उसने अपने पुत्र प्रह्लाद से गुरु का पढ़ाया हुआ पाठ सुनना चाहा। प्रह्लाद ने विष्णु की महिमा का गान किया। उसने प्रह्लाद से अपने शत्रु विष्णु का नाम तक लेने को मना किया, पर प्रह्लाद फिर भी विष्णु के गुण गाने लगा। इस पर उसकी आज्ञा से प्रह्लाद को मारने के अनेक उपाय किए गए, पर प्रह्लाद को विष्णु की भक्ति से विरत नहीं किया जा सका। वह उसे राजमहल में एक खम्भे से बांधकर कष्ट देने लगा। कष्ट देते समय बार-बार प्रह्लाद से कहने लगा—

"अब बोल, तेरा भगवान् कहां है?"

प्रह्लाद ने कहा—"वह सब जगह है। इस खंभे में भी है।"

प्रह्लाद के इस उत्तर से क्रोधित होकर उसने खंभे पर लात से प्रहार किया। उसमें से नृसिंह रूप भगवान् प्रकट हुए। उन्होंने हिरण्यकश्यप को पकड़कर अपनी जांघों पर लिटाया और उसके हृदय को नखों से विदीर्ण कर उसे मार दिया। हिरण्यकश्यप के बाद विष्णुभक्त प्रह्लाद दैत्यों के राजा बने।

पुत्रों में बांट दिया। पुत्रों ने तक्षशिला और पुष्करावती नामक नगर स्थापित किए और वहीं रहने लगें। भरत ने श्रीराम के साथ ही स्वर्गारोहण किया था।

शत्रुघ्न

शत्रुघ्न महाराजा दशरथ की तीसरी पत्नी महारानी सुमित्रा के पुत्र थे। महाराजा दशरथ द्वारा पुत्र प्राप्ति की कामना से किए गए यज्ञ के, हवन करने से बचा हुआ चरु खाने पर सुमित्रा के लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामक दो पुत्र हुए थे। जैसे लक्ष्मण का श्रीराम के साथ बहुत लगाव था, उसी प्रकार शत्रुघ्न कैकेयी के पुत्र भरत के साथ प्रेम करते थे। शत्रुघ्न छाया की तरह भरत के साथ रहते थे। जब भरत ननिहाल जाते तो वे भी उन्हीं के साथ चले जाते।

श्रीराम के वनवास के दिनों में अयोध्या पर जो मुसीबत आई और भरत को जिन कठोरतम परिस्थितियों से गुजरना पड़ा, उन सबमें शत्रुघ्न ने भरत की भरपूर सहायता की। अयोध्या का राजकाज चलाने में भरत को अपूर्व सहयोग देकर शत्रुघ्न ने राज्य में व्यवस्था बनाए रखी।

श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ के प्रसंग में तथा मथुरा के लवणासुर नामक अन्यायी और अत्याचारी के वध में अपूर्व वीरता प्रदर्शित की थी। लक्ष्मण को लंका के युद्ध तथा भरत को गन्धर्वों के दमन में वीरता प्रदर्शित करने का मौका मिला था। जबकि शत्रुघ्न को केवल लवणाख्य असुर को नियन्त्रित करने के लिए भेजा गया था। मधुपुर में भयानक युद्ध करने के उपरान्त लवणाख्य असुर को मारने के उपरान्त उन्होंने मधुपुर में अपना शासन स्थापित किया था। अध्यात्म रामायण के अनुसार शत्रुओं का नाश करने में समर्थ होने पर ही इनका नाम शत्रुघ्न रखा गया।

नृसिंहदेव

डोगरा भूमि में भक्त प्रह्लाद की कथा बहुत प्रसिद्ध है। भगवान् नृसिंह का अवतार प्रह्लाद की रक्षा के लिए ही हुआ था। वैशाख मास

भरत

भरत कैकेयी के गर्भ से राजा दशरथ के पुत्र थे। लक्ष्मण के अनुज शत्रुघ्न के साथ इन्हें बहुत स्नेह था। इन्हें ननिहाल में रहना बहुत अच्छा लगता था अतः ये अपना अधिक समय ननिहाल में ही बिताया करते थे। इनका विवाह अपने बड़े भाई श्रीराम के विवाह के समय राजा जनक के भाई कुशध्वज की कन्या माण्डवी से हुआ था। विवाह के उपरांत भरत पुनः अपने ननिहाल चले गए।

श्रीराम के द्वारा अपने पिता के वचन का पालन करने के लिए वन-गमन करने पर दशरथ की मृत्यु हो गई। भरत ने ननिहाल से आकर पिता का क्रिया-कर्म किया। कैकेयी का तिरस्कार करके वन में जाकर श्रीराम को लौटाने का बहुत यत्न किया। जब श्रीराम ने सत्यभंग करके अयोध्या में लौटना स्वीकार न किया तो भरत श्रीराम की पादुकाएं लेकर ब्रह्मचारी के वेश में अयोध्या के बाहर नन्दीग्राम में रहकर राज्य का शासन चलाने लगे। भरत श्रीराम के लौटने की प्रतीक्षा में गिन-गिनकर दिन काटते रहे। और जब राम चौदह वर्ष वनवास काटकर वापिस अयोध्या लौटे तो भरत ने उन्हें राज्य लौटा दिया। भरत ने अपना जीवन श्रीराम की सेवा में समर्पित कर दिया।

भरत के तक्ष और पुष्कर नामक दो पुत्र थे। एक बार भरत के ननिहाल से श्रीराम को पत्र मिला कि शैलूष नामक गन्धर्व के नेतृत्व में गन्धर्व उनके राज्य में आतंक फैला रहे हैं। उनसे उनके राज्य की सुरक्षा की जाए। पेशावर और रावलपिण्डी का जिला, उत्तर-पश्चिमी पंजाब का अंचल और काबुल, गान्धार नाम से जाने जाते थे। कैकेय राज्य गान्धार की पूर्व दिशा में स्थित था।

श्रीराम ने भरत को गन्धर्वों का दमन करने की आज्ञा दी। भरत अयोध्या से अपने दोनों पुत्रों सहित चले। गंगा, यमुना, कुरुक्षेत्र, व्यास, और रावी नदी से होते हुए जम्मू की देविका नदी पर आकर ठहरे। चन्द्रभागा को पारकर आगे बढ़ते हुए भरत ने शैलूष को परास्त कर सिन्धु नदी के उत्तर में स्थित गन्धर्व देश को विजित करके उसे दोनों

परिणामस्वरूप देवताओं का पार्वती के द्वारपाल से युद्ध होने लगा।

युद्ध का समाचार सुनकर पार्वती ने पुत्र की सहायता के लिए शक्तियों को भेजा। इस बीच शिव ने त्रिशूल से द्वारपाल का सिर काट दिया। यह अनर्थ देखकर शक्तियां देवताओं का संहार करने लगीं। जब देवताओं ने भयभीत होकर संहार रोकने की प्रार्थना की तो पार्वती ने कहा जब तक उनका पुत्र जीवित नहीं होता और देवताओं में प्रथम पूज्य नहीं माना जाता, तब तक संहार नहीं रुकेगा। इस पर शिव ने हाथी का सिर लगाकर बालक को जीवित करके उसका नाम गणेश रखा और उसे सर्वपूज्य और प्रथम पूज्य होने का वरदान दिया।

गणेश के प्रथम पूज्य होने के सम्बंध में और भी अनेक कथाएं मिलती हैं। एक बार देवताओं में विवाद हुआ कि उन सब में अग्र पूजा का अधिकारी कौन है। इसका निर्णय करने के लिए ब्रह्मा ने देवताओं से कहा—

"आप सब लोग अपने-अपने वाहनों पर इस स्थान से एक साथ प्रस्थान कीजिए तथा पूरे विश्व की परिक्रमा करके मेरे पास लौट आइए। जो सबसे पहले पहुंचेगा, वही अग्र पूजा का अधिकारी बन जाएगा।"

सभी देवता अपने-अपने वाहन पर विश्व की परिक्रमा करने चल पड़े। गणेश का वाहन चूहा सबसे पीछे रह गया। वे उदास हो गए। उसी समय नारद ने उन्हें राम के नाम का प्रभाव बताया। उनके कहने पर गणेश ने राम के नाम को पृथ्वी पर लिखकर उसकी परिक्रमा कर ली और फिर ब्रह्मा के पास जा पहुंचे। ब्रह्मा ने उन्हें प्रथम पूजा का अधिकारी घोषित किया।[1]

---

1. पदम पुराण : सृष्टि खण्ड, अ० 61
2. मानस पीयूष
3. शिवपुराण : रुद्रसंहिता, कुमारखण्ड अ०, 13-18
4. ब्रह्मवैवर्त पुराण : गणेशखण्ड अ०, 1-13

संयोग से सप्तर्षि पुनः तीर्थयात्रा प्रसंग जब से उसी मार्ग से जा रहे थे तो उन्होंने राम-नाम का शब्द सुना। वे समझ गए कि वैशाख अभी उधर ही बैठा है। उन्होंने वाल्मीकि खोदकर उसे बाहर निकाला और कहा :

"वैशाख! तुम मन्त्र के प्रभाव से सिद्धि प्राप्त कर चुके हो। मन्त्र का जप करने में तुम इतने लीन हो गए थे कि तुम पर वाल्मीक जमती जा रही थी। इस वाल्मीक के कारण आज से तुम्हारा नाम वाल्मीकि होगा। भारती देवी तुम्हारी जिह्वा पर रहेंगी। तुम जिस राम के नाम का जप करके इस श्रेष्ठ स्थिति तक पहुंचे हो, उन्हीं पर रामायण महाकाव्य की रचना करके तुम मोक्ष के अधिकारी बनोगे।"[1]

गणेश

शंकर भगवान् की प्रिय भार्या दुर्गा के पुत्र गणेश हैं। इनके बड़े भाई का नाम कुमार स्कन्द था। पुराण साहित्य में इनके जन्म के सम्बंध में अनेक कथाएं मिलती हैं। सबसे अधिक विश्रुत कथा इस प्रकार है—

पार्वती की जया और विजया नामक दो सखियां थीं। उनके अनुरोध से पार्वती ने, शिवगणों की देखा-देखी अपना भी एक गण बनाने का विचार किया। उन्होंने अपने शरीर के मैल से एक पराक्रमी पुरुष बनाया और उसे अपना पुत्र मानकर द्वारपाल के कार्य पर नियुक्त कर दिया।

एक दिन जिस समय पार्वती घर के अन्दर स्नान कर रहीं थीं तभी भगवान् शिव वहां आए। जब वे घर के अन्दर जाने लगे तो द्वारपाल ने उन्हें रोका। शिव द्वारा समझाने पर भी जब उसने उनकी बात नहीं मानी तो उन्होंने अपने गणों को उसे द्वार पर से हटा देने की आज्ञा दी। जब शिव के गण जबरदस्ती करने पर उतर आए तो द्वारपाल ने उन्हें मार-मार कर भगा दिया। बात बिगड़ते देखकर ब्रह्मा ने जब द्वारपाल को समझाने का यत्न किया तो वह उनसे भी लड़ने को तैयार हो गया।

---

1. स्कन्दपुराण : प्रभासखण्ड, अ०, 278

प्राचीनकाल में समीमुख नाम का एक ब्राह्मण था। उसके पुत्र का नाम वैशाख था। जब वैशाख बड़ा हुआ तो माता-पिता ने उसे ब्राह्मणोचित शिक्षा देने की व्यवस्था की, परन्तु बुरी संगति के प्रभाव से वह इस ओर ध्यान न देकर चोरी और राहजनी करने लगा। ऐसा करते-करते वह एक भयानक डाकू बन गया।

एक बार तीर्थयात्रा पर जाते समय सप्तर्षि उसके काबू आ गए। वैशाख ने उनके वस्त्र, छाता, कमंडल मृगचर्म आदि सब छीन लिए। ऋषियों ने उसे यह कहकर समझाने का यत्न किया कि जिन लोगों के पालन के लिए वह पापकर्म करता है, क्या वे उसके द्वारा किये जाने वाले पापों के भागीदार होंगे? पाप एक आदमी करता है। उस पापकर्म से अर्जित फल का उपभोग अनेक लोग करते हैं। किन्तु वे सब पाप के भागी नहीं बनते। पापकर्म करने वाला ही दोषी माना जाता है।

यह सुनकर वैशाख चकरा गया। उसने ऋषियों को वहीं पेड़ से बांध दिया और स्वयं घर जाकर अपने माता-पिता और पत्नी से उस बात की चर्चा की। उसके माता-पिता ने कहा कि जब बच्चा छोटा होता है तो माता-पिता उसका-पालन पोषण करते हैं और जब वे बूढ़े हो जाते हैं तो पुत्र उनकी पालना करता है। यह एक-दूसरे के प्रति धर्म है। जब उसने अपनी पत्नी से वही प्रश्न किया तो उसने भी वैसा ही उत्तर दिया।

इससे वैशाख की आंखें खुल गईं। वह दौड़ता हुआ ऋषियों के पास गया। चरणों में गिरकर क्षमा मांगी और पापों से मुक्त होने का उपाय पूछा।

ऋषियों ने उसे राम-नाम मन्त्र का जप करने का परामर्श दिया और तीर्थयात्रा पर चले गए। वैशाख देविका नदी के तट पर तप करने लगा। तप में लीन उसका शरीर वाल्मीक से आवृत हो गया, किन्तु उसकी वाणी राम-नाम का जप करती रही।[1]

---

1. स्कन्दपुराण: प्रभास खण्ड, अ० 278

हम बड़े भाग्यवान हैं।"[1] राम के राजतिलक के उपरान्त ब्रह्मानन्द में मग्न वानरों को पता ही नहीं चला कि अयोध्या रहते उन्हें छः महीने हो गए हैं।[2] उन लोगों को अपने घर भूल ही गए। जाग्रत की तो बात ही क्या, उन्हें स्वप्न में भी घर की याद नहीं आई।[3]

इस प्रकार ब्रह्मज्ञानियों में अग्रगण्य, निष्काम कर्मयोगी एवं भक्तराज हनुमान अपनी सेवा और भक्ति से परब्रह्म श्रीराम तथा सृष्टि का पालन और संहार करने वाली मूल प्रकृति श्री सीता के चरणों में सदा के लिए अपना स्थान बना लेने में सफल हुए।[4]

वाल्मीकि

भारतीय साहित्य और संस्कृति के अमर ग्रन्थ आदिकाव्य रामायण की रचना करने वाले महर्षि वाल्मीकि की मूर्ति कुछ काल पूर्व डॉ० कर्णसिंह जी द्वारा स्थापित की गई है। पुराण साहित्य के अनुसार डोगरा भूमि की प्रसिद्ध और पवित्र नदी देविका के तट पर तपस्या करके इन्हें सप्तर्षियों से रामायण लिखने का वरदान प्राप्त हुआ था।

---

1. हम सब सेवक अति बड़भागी।
   संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी॥
   —मानस 4/25/7

2. ब्रह्मानन्द मगन कपि सबके प्रभु पद प्रीति।
   जात न जाने दिवस तिन्ह गए मास षट बीति॥
   —वही 7/15

3. बिसरे गृह सपनेहु सुधि नाहीं।
   —वही, 7/15 1

4. राम विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्।
   मां विद्धि मूल प्रकृति सर्गास्थित्यन्त कारिणीम्॥
   —अध्यात्मरामायण : 1/1/32-34

को जो मोदक (लड्डू) तेल और सिन्दूर चढ़ाएंगे उन्हें मेरी प्रसन्नता प्राप्त होगी तथा उनकी सारी कामनाएं पूरी हो जाया करेंगी।"

भगवान् राम की इसी घोषणा के कारण परंपरा से मंगलवार के दिन हनुमान जी को मोतीचूर का प्रसाद चढ़ाया जाता है तथा उनकी मूर्ति पर सिन्दूर लगाने की भी प्रथा है।

अपनी विशेषताओं के कारण आज हनुमान जी भारत के गांव-गांव और घर-घर में पूजित होते हैं। उन्हें जन देवता के रूप में स्वीकार किया जा चुका है। यही कारण है कि भारत की प्रायः सभी प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य में इनका वर्णन हुआ है। संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगला, उड़िया, तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम, पंजाबी, उर्दू और अंग्रेजी भाषा में इनसे संबंधित रचनाएं उपलब्ध हैं। भारत में ये अभीष्ट फल प्रदान करने वाले देवता के रूप में विश्रुत हैं।[1]

जहां तक इनके वानर रूप की बात है वह तो इन्होंने श्री राम की सहायता करने के लिए नारद से शाप के धारण किया था। वास्तव में ये परात्पर ब्रह्म के उपासक थे। रामायण और रामचरितमानस में राम की सहायता करने वाले सभी वानरों को ब्रह्म की उपासना करने वाले बताया गया है। उपनिषदों में आनन्द ब्रह्म की वन नाम से व्याख्या करते हुए कहा है कि 'वन' नामक ब्रह्म में जो आनन्द रस है उसका नाम है—'वान'। उस वान को जो ग्रहण या उसका आस्वादन करते हैं, वे वानर हैं।[2] मानस में जामवन्त वानरों को बताते हैं—हम सब श्रीराम के रूप में सतत सगुण ब्रह्म की उपासना कर रहे हैं। अतः

---

1. हनुमान देवता प्रोक्तः सर्वाभीष्ट फल प्रदः।

—श्री विधार्णव तन्त्रः 28/11

2. वने भवम् वानम्, वानं राति इति वानरः।

—केनोपनिषद : 4/6.

हनुमान जी को अपने निवासस्थान के पहरेदार अथवा अंगरक्षक के रूप में ही सेवा करने का आदेश दिया।

हनुमान जी की मूर्ति पर सिंदूर पुता होता है और मंगलवार के दिन उनके मन्दिरों में भक्तजनों की विशेष भीड़ होती है। इस सम्बंध में एक विश्रुत कथा इस प्रकार है :

राजा राम अयोध्या में शासन कर रहे थे। एक बार मंगलवार के दिन प्रातःकाल ही हनुमान जी को भूख लगी तो वे माता जानकी के पास पहुंचे और नाश्ते की मांग की। माता जानकी ने कहा कि स्नान करने के उपरान्त वे उन्हें मोदक देंगी। हनुमान प्रतीक्षा करने लगे। माता ने स्नान करके श्रृंगार करना आरंभ किया। माता की मांग में सिन्दूर देखकर हनुमान जी ने पूछा—

"माता जी ! आपने सिन्दूर क्यों लगाया है ?" माता जानकी ने हंसते हुए कहा—

"इस लाल सिन्दूर को लगाने से तुम्हारे प्रभु की आयु बढ़ती है।"

सिन्दूर लगाने से उनके स्वामी की आयु बढ़ती है, यह सोचकर हनुमान जी तत्काल उठे, अपने सारे शरीर पर तेल लगाया और उसके बाद पैरों से मस्तक तक सारे शरीर पर सिन्दूर पोत लिया। इस प्रकार सिन्दूर लगाने की खुशी में वे अपनी भूख भी भूल गए। वे सीधे राजसभा में पहुंचे। उन्हें देखकर सब हंसने लगे। श्रीराम ने जब उन्हें सिन्दूर लगाने का कारण पूछा तो उन्होंने बड़े भोलेपन से जवाब दिया कि माता जानकी के द्वारा तनिक-सा सिन्दूर लगाने से आपकी आयु में वृद्धि होती है। यह जानकर आपकी अत्यधिक आयु वृद्धि के लिए मैंने अपने समूचे शरीर में सिन्दूर लगाना आरंभ कर दिया है।

श्री राम हनुमान की सरलता पर मुग्ध हो गए। उन्होंने घोषणा कर दीं :

"आज मंगलवार है, इस दिन मेरे परम प्रिय भक्त महावीर हनुमान

जब लंका में उनकी पूंछ को आग लगाई जाने लगी तो सीता जी ने उनकी रक्षा के लिए अग्नि देवता से प्रार्थना करते हुए कहा था :

"अक्ष आदि राक्षसों को मारने वाले हनुमान जी को देखकर मेरी आँखों में व्यथा के आँसू भर रहे हैं। आप उनके पिता पवन देवता के मित्र हैं। मैं आपसे उनके कल्याण की याचना करती हूं। हे अग्निदेव! हमने पहले आपको यज्ञों में संदीप्त किया है। आप हमारे भक्त हनुमान की राक्षसों के प्रहार से दिन-रात रक्षा कीजिए।[1] माता सीता की प्रार्थना से अग्निदेव अत्यंत शीतल हो गए और उन्होंने हनुमान की पूंछ को नहीं जलाया।[2] युद्ध के उपरान्त जब हनुमान ने सीता को रावण के विनाश की सूचना दी तो सीता ने कहा था :

"हनुमान तुमनें मेरा बड़ा उपकार किया है। मैं तुमसे कभी उऋण नहीं हो सकती।"

यह सुनकर हनुमान माता सीता के चरणों में गिर पड़े और कहा कि पुत्र तो माता से कभी उऋण नहीं हो सकता। उन्हें मां की सेवा का अवसर मिलता रहे, यही उनकी कामना है।

अन्त में श्रीराम और सीता से वरदान पाकर हनुमान तपस्या करने हिमालय पर चले गए थे।[3] महिषासुर से संतप्त देवगण जब हिमालय पर गए और देवी ने उनकी रक्षा का आश्वासन दिया तो हनुमान भी माता की सेवा के लिए उनके साथ हो लिए। माता में सभी देवताओं की शक्तियां समाहित रूप में विद्यमान थीं और दूसरा वे यह भी दिखाना चाहती थीं कि संसार में उनके सिवा दूसरा कोई नहीं है, अतः

---

1. ऋगवेद, 16/87/1
2. वायो प्रिय सखित्वा च सीतया प्रार्थितोऽनलः।
   न ददाह हरेः पुच्छं बभूवात्यन्त शीतलः॥
   —अध्यात्म रामायण : 5/4/46
3. अध्यात्म रामायण: 6/16/16-17

शिवरूप हनुमान ने श्री राम तथा माता सीता की ऐसी अनुपम और अनन्य सेवा की, जिसके कारण वे कालान्तर में उनके अविभाज्य अंग बन गए। उनकी सेवा से कृतज्ञ होकर श्रीराम को कहना पड़ा था :

"हे हनुमान ! सुन, तेरे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं बदले में तेरा उपकार तो क्या करूं, मेरा मन भी तेरे सामने नहीं हो सकता। हे पुत्र! सुन, मैंने मन में बहुत विचार करके देख लिया कि मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता। देवताओं के रक्षक प्रभु बार-बार हनुमान जी को देख रहे हैं। उनके नेत्रो में प्रेमाश्रुओं का जल भरा है और शरीर अत्यंत पुलकित है।[1]

श्री राम की तरह सीता जी भी हनुमान को पुत्रवत् मानकर उनसे स्नेह करती हैं। आठ प्रकार की सिद्धियाँ और नौ प्रकार की निधियां उन्हें माता जानकी के वर से प्राप्त होती हैं।[2] उन्हीं का आशीर्वाद था कि हनुमान जहाँ कहीं भी रहेंगे, उन्हें सभी प्रकार के भोग प्राप्त होते रहेंगे।[3]

---

1. सुनु कपि तोहि समान उपकारी।
नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा।
सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।
देखेउं करि बिचार मन मांही॥
पुनि पुनि कपिहिं चितव सुरत्राता।
लोचन नीर पुलक अतिगाता॥ —मानस : उत्तरकाण्ड

2. अष्टसिद्धि नवनिधि के दाता।
अस बर दीन्ह जानकी माता॥ —हनुमान चालीसा

3. तमाह जानकी प्रीता यत्र कुत्रापि मरुतेः।
स्थितं त्वामनु यास्यन्ति भोगाः सर्वे ममाज्ञया॥
—अध्यात्म रामायण : 6/16/15

सप्तर्षियों ने कानों के मार्ग से अंजना के गर्भ में संक्रान्त कर दिया जिससे हनुमान का जन्म हुआ ।[1]

अन्यत्र प्रसंग है कि शिव-पार्वती रावण की रक्षा के लिए लंका में निवास करते थे। उनके पास देवता रावण के अत्याचार की कथा सुनाने के लिए गए । तब सीता के अपमान से दुखी होकर पार्वती ने लंका छोड़ने की बात कही। श्रीराम के काम की सफलता के लिए शिव, हनुमान, ब्रह्मा, जामवन्त तथा धर्म ने विभीषण का रूप धारण किया ।[2] इसी पुराण में आगे चल कर लिखा है कि अशोक-वाटिका में जब हनुमान जी ने चण्डिका मंदिर को देखा तब अपने को शिव का रूप बतलाकर, देवी को लंका छोड़ने का आग्रह किया। हनुमान रूपी शिव ने देवी को अपने विश्वरूप का दर्शन कराया, जिसमें देवी ने रावण की सेना को संकट में तथा राम की सेना को सफल रूप में देखा ।[3]

वायुपुराण के अनुसार श्री महादेव ही हनुमान के रूप में अवतीर्ण हुए थे ।[4] त्रिपुरनाश से पूर्व देवताओं ने भगवान् शिव की विभूतियों का वर्णन करते हुए उनके हनुमान रूप का स्मरण किया था ।[5] वेद में भी हनुमान को शिव ही माना गया है ।[6] हनुमत्सहस्त्रनाम स्तोत्र में हनुमान को शिव, विश्वनाथ, सदाशिव, महेश्वर आदि नामों से संबोधित किया है।

---

1. शिवपुराण: शतरुद्रसंहिता, अध्याय, 20
2. बृहद्धर्मपुराण : अध्याय, 18
3. बृहद्धर्मपुराण : अध्याय, 20
4. अंजनी गर्भ संभूतो हनुमान पवनात्मजः।
   यदा जातो महादेवो हनुमान सत्य विक्रमः ।।
   —वायुपुराण : पूर्वार्ध 60/73
5. आदित्यानां वासुदेवो हनूमान वानरेषु च ।
   —शिवपुराण : रुद्रसहिता, युद्ध खण्ड 2/5
6. शिवस्तु हनुमान स्मृतः । —तार सारोपनिषद : 2/3

जो देवी परमशुद्ध तत्वस्वरूपा हैं, उनका नाम महालक्ष्मी है। परम परमात्मा श्रीहरि की वे शक्ति हैं। हजार पंखुड़ियों वाला कमल इनका आसन है। इनके मुख की शोभा तपे हुए सोने के समान है और इनका रूप करोड़ों चन्द्रमाओं की कान्ति से सम्पन्न है। वे सदा मुस्कराती रहती हैं। सम्पत्तियों की ईश्वरी होने के कारण अपने सेवकों को ये धन, ऐश्वर्य, सुख, सिद्धि और मोक्ष प्रदान करती हैं।

भगवान् श्रीहरि की माया तथा उनके तुल्य होने के कारण इन्हें नारायणी कहा जाता है। वैष्णवी और दुर्गा इनके दूसरे प्रसिद्ध नाम हैं। जैसे नदियों में गंगा, देवताओं में श्रीहरि तथा वैष्णवों में शिव श्रेष्ठ स्वीकार किए गए हैं, उसी प्रकार देवी के सभी नामरूपों में वैष्णवी नाम से प्रसिद्ध भगवती महालक्ष्मी सर्वश्रेष्ठ हैं। ये देवी अत्यंत सुन्दर, संयमशील, शान्त, मधुर और कोमल स्वभाव की हैं।

अपने भक्तों पर कृपा करते रहना इनका स्वभाव है। जिस धन से मानव-मात्र का सांसारिक कार्य-व्यापार संचालित होता है, उसकी ये अधिष्ठातृ देवी हैं। लक्ष्मी से हीन दरिद्र व्यक्ति का जीवन, जीते हुए भी मृत के समान होता है, और जिस पर लक्ष्मी की कृपा होती है वह सुखी और सम्मानित जीवन व्यतीत करता है। जो लक्ष्मी से हीन है, वह भाई-बांधओं और मित्रों से हीन है। जो लक्ष्मी से युक्त है, वह बन्धु-बांधवों और मित्रों से घिरा रहता है। माता महालक्ष्मी की कृपा से ही मानव की शोभा होती है और वह सुखी और निश्चित जीवन बिता सकता है। धर्म, काम और मोक्ष उसके लिए सुलभ हो जाते हैं।

माता महालक्ष्मी अत्यंत कृपामयी हैं। उन्हें अपने भक्त अत्यंत प्रिय हैं। वे माता के समान उनका पालन करने के साथ-साथ उनकी अभिलाषाएं पूर्ण करती हैं। माता महालक्ष्मी ने ही लोकरक्षा और लोक-मंगल के लिए भिन्न-भिन्न नाम-रूपों में महिषासुर, शुंभ-निशुंभ, चण्ड-मुण्ड आदि का संहार किया था।

शिव

जिनमें समस्त मंगल विद्यमान हैं, वे शिव हैं।[1] सृष्टि का सुचारु रूप से संचालन करने के लिए परात्पर ब्रह्म ने अपने तीन रूप बनाए थे—ब्रह्मा, विष्णु और शिव। ब्रह्मा सृष्टि के लिए, विष्णु पालन के लिए तथा शिव संहार के लिए।[2]

शिव का पूर्वनाम रुद्र था। रुद्र शब्द का अर्थ है, जो रुलाता है वही रुद्र है। संसार में संकटावस्था और संहार का हेतु यही रुद्र है।[3] अथर्ववेद में रुद्र का वर्णन सर्वनाशक के रूप में हुआ है। अधिकांश वैदिक मन्त्र इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं।[4] इसके अतिरिक्त रुद्र का वर्णन अग्निरूप में भी हुआ है।[5] अपने इसी प्रभाव से रुद्र वैदिक काल के सर्वप्रथम देवता थे, जो बाद में कर्मानुसार गिरीश, पशुपति, नीलकण्ठ, शंकर आदि नामों से भी अलंकृत हुए। समय के साथ-साथ उनके सम्बंध में आर्य जाति द्वारा की गई अनेक कल्पनाएं लुप्त होती गईं। अन्तर पड़ता गया। रुद्र, भूतेश, सर्पधारी, और श्मशान निवासी देवता के रूप में परिणत हो गए। प्राचीन काल में की जाने वाली शिवमूर्ति की पूजा की परंपरा समाप्त हो गई। उसका स्थान रुद्र (शिवलिंग) की पूजा करने वाली नई परंपरा ने ले लिया और इस प्रकार शिव की पूजा मूर्ति की अपेक्षा, लिंग में अधिकता से की जाने लगी।[6]

सामान्य रूप में देवता की पूजा मूर्ति में ही की जाती है। शिव की

---

1. नगेन्द्रनाथ वासु, हिन्दी विश्वकोश
2. परमात्मा यथादैव एकैव त्रिधाऽभवत्। —वराहपुराण : 96/60
3. ऋग्वेद, 1/114।4
4. अथर्ववेद 6/90।1
5. (क) त्वमग्निरुद्र असुर। —ऋग्वेद 2/1/6
   (ख) अग्निरुपि रुद्र उच्येत। —सामवेद, 1/15
6. डॉ० रघुनाथसिंह, राजतरंगिणी भाष्य

पूजा मूर्ति और लिंग, दोनों में किए जाने का कारण यह बताया गया है कि एकमात्र भगवान् शिव ही ब्रह्मरूप होने के कारण, निराकार तथा रूपवान होने के कारण, साकार हैं। रुद्र उनके निराकार रूप का प्रतीक है और शिव साकार रूप का। शिव के निराकार होने के कारण उनकी पूजा का आधारभूत लिंग भी निराकार है। अर्थात् शिवलिंग शिव के निराकार रूप का प्रतीक है। इसी प्रकार शिव के साकार होने के कारण उनकी मूर्ति की भी पूजा की जाती है। इसी से लिंग और मूर्ति दोनों रूपों में शिव-पूजा की परंपरा है।[1]

धीरे-धीरे शिव अपने कोप और कल्याण करने की शक्ति के कारण प्रभाव प्राप्त करते-करते रामायण, महाभारत तथा पुराण साहित्य में लोकप्रियता के शिखर पर पहुंचते हुए दिखाई देते हैं। अठारह पुराणों में से दस पुराणों में शिवलिंग का गान हुआ है।[2] उनके बहुमुखी चरित्र पर प्रकाश डालने के लिए अनेक आख्यानों की रचना की गई है, जिनमें उनके लोकोपकारी रूप का वर्णन किया गया है।

वे भोले भी थे और वीरों के वरदाता भी। कितने ही लोगों ने शौर्य और विजय के लिए उनकी तपस्या करके वरदान प्राप्त किए। कितने ही वीर पुरुष और ऋषि-मुनि उन्हें प्रसन्न करके अमर हो गए। रावण और वाण जैसे महाबली राजा, दुर्वासा जैसे महर्षि शिव के परमभक्त थे। आशुतोष होने के कारण साधारण जनता से लेकर सम्राटों तक के प्रिय होने के कारण उनकी महिमा का प्रचार और प्रसार बढ़ता गया और वे भारतवर्ष के प्रत्येक प्रदेश में समान भाव से पूजित होने लगे।

शिव जैसा समदर्शी कोई दूसरा देवता नहीं है। उन्होंने बिना किसी भेदभाव के दैत्यों और देवताओं की सहायता की। अपने इस स्वभाव के कारण वे कई बार विपत्तिग्रस्त भी होते रहे, परन्तु जो भी उनकी

---

1. कल्याण, शिव पुराणांक
1. अष्टादश पुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः —स्कन्दपुराण

शरण में आया, वह निराश नहीं लौटा। देवताओं के लाभ के लिए उन्होंने विषपान तक कर लिया। मृत्युलोक के कल्याण के लिए आकाश से धरती पर आने वाली गंगा को भी अपने सिर पर धारण किया। अपनी पत्नी सती एवं पार्वती के साथ मिलकर इस प्रकार की मनमोहक लीलाएं कीं जिनके कारण आज भारत के कोने-कोने में शक्ति पूजा का प्रचार है।

इस प्रकार अपनी प्रकृति और प्रभाव के कारण शिव आर्यजाति के प्रमुख और प्रधान देवता बन गए। उसी प्रभाव के कारण आज समूचा भारत उनकी महिमा से मंडित है। उनके ही सबसे अधिक पूजा-स्थल हैं। भारत के एक सीमावर्ती क्षेत्र में वे रामेश्वर रूप में हैं तो इसी प्रकार के दूसरे क्षेत्र में वे स्वामी अमरनाथ के रूप में हैं। भारतवर्ष में महत्व और मान्यता की दृष्टि से शिव के समान दूसरा कोई देवता नहीं है।

रामायण और महाभारत में शिव वीर रूप में ही वर्णित हुए हैं। पुराण साहित्य की कथाओं से स्पष्ट होता है कि शिव ने अपने रुद्र-रूप में जालंधर, अन्धक, दारुक, त्रिपुर आदि भयंकर दैत्यों के विनाश के समय अप्रतिम शौर्य प्रदर्शित किया था।[1]

कर्णेश्वर महादेव

श्री रघुनाथ मन्दिर समूह में कुछ समय पूर्व एक और नये मन्दिर की वृद्धि हुई है। जिस प्रकार महाराजा श्री रणवीर सिंह जी ने भगवान् शिव का मन्दिर बनवाकर उसका नाम रणवीरेश्वर रखा था, उसी प्रकार डॉ० कर्णसिंह जी ने भगवान् शिव और उनके परिवार देवता की मूर्तियों वाला मन्दिर बनवाकर उसका नाम कर्णेश्वर मन्दिर रखा है। जम्मू-कश्मीर में भगवान् शिव के मन्दिर बनवाकर उनके इस प्रकार के नाम रखने की प्रथा बड़ी पुरानी है।

इस नए मन्दिर को नटराज का मन्दिर भी कहा जाता है। इसमें

---

1. दुर्गासप्तशती अध्याय 7

शिव नृत्य की मुद्रा वाली मूर्ति में तथा रुद्ररूप में विराजमान हैं। नटराज के एक तरफ गणेश तथा दूसरी तरफ माता वगलामुखी की मूर्ति है। भगवान् शिव और गणेश का संक्षिप्त परिचय अन्यत्र दिया जा चुका है। माता वगलामुखी का सम्बन्ध दशमहाविद्या से है।

दशमहाविद्या का अर्थ है शाक्त संप्रदाय में उपास्य शक्ति की दस मूर्तियाँ इनकी उत्पत्ति के सम्बंध में कहा गया है कि जब शिव की पत्नी सती ने बिना बुलाए ही अपने पिता दक्ष के यज्ञोत्सव में जाना चाहा तो शिव ने उनकी बात नहीं मानी और सती को जाने से रोक दिया। इस पर सती क्रोध में आ गईं। उन्होंने काली का प्रचण्ड रूप धारण कर शिव को डराया। जब शिव डरकर वहाँ से भागनें को उद्यत हुए तो महामाया सती ने दसों दिशाओं में दस मूर्तियों में आविर्भूत होकर भागने के सभी रास्ते वन्द कर दिए।[1] उस समय महामाया ने जो दस रूप धारण किए थे, उन्हें ही दशमहाविद्या कहा जाता है, वे काली, तारा, पोड़शी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, वगलामुखी, धूमावती और मातंगी नाम से विश्रुत हैं।[2]

शिव को इन देवियों का परिचय देते समय सती ने कहा था कि शत्रुओं का नाश करने वाली जो देवी आपके पीछे खड़ी है, उसका नाम वगलामुखी है।[3] वकार का अर्थ वारुणी देवी, गकार का अर्थ सब प्रकार

---

1. एवं पतिवीक्ष्य भयातिभूतं।
   दयान्विता तत्प्रतिवारणेच्छया॥
   सर्वासु दिक्षु प्रतिवारणेच्छया।
   स्थिता च भूत्वादशभूर्तयस्तदा।
   —भागवत पुराण, अ०, 8

2. काली तारा महाविद्या पोड़शी भुवनेश्वरी।
   भैरवी छिन्नमस्ता च सुन्दरी वगलामुखी।
   धूमावती च मातंगी······ —वही, अ०, 8

3. पृष्ठतः तव देव्येषा वगला शत्रुसूदनी। —महाभागवत, अ०, 8

की सिद्धि देने वाली और लकार का अर्थ पृथ्वी है, तथा ये देवी स्वयं चैतन्यरूपिणी हैं। इसी कारण से इनका नाम बगला रखा गया है।[1]

---

1. बकारे वारुणी देवी गकारे सिद्धिदा स्मृता।
   लकारे पृथ्वी चैव चैतन्या मे प्रकीर्तिता

—नारद पंचरात्र : अ०, 31

समाधि, सराय, विद्यालय और लायब्रेरी

श्री रघुनाथ मंदिर परिसर के पूर्वी भाग में महाराजा रणवीरसिंह, महाराजा गुलाब सिंह एवं राजा अमरसिंह जी के समाधि-मंदिर बने हुए हैं। इनमें महाराजा रणवीरसिंह जी का समाधि मंदिर सबसे विशाल, उच्च और सुन्दर है। इस मन्दिर में स्थापित रुद्र का आकार इतना बड़ा है कि उसे देखकर आश्चर्य होता है। मन्दिर के गगनचुम्बी चमकीले कलश दूर-दूर तक दिखाई देते हैं। समाधि-मंदिर का प्रांगण काफी लंबा और चौड़ा है। रामनवमी, कृष्ण जन्माष्टमी, दुर्गापूजा आदि से सम्बन्धित सभी उत्सवों का आयोजन इसी स्थान पर किया जाता है।

महाराजा गुलाबसिंह जी का समाधि-मन्दिर इससे काफी छोटा है। पर इस मन्दिर की चारों तरफ की दीवारें स्वर्ण-पत्रों से मण्डित होने के कारण सूर्य के प्रकाश में चमकती रहती हैं। स्थानीय और विदेशी फोटोग्राफरों और चित्रकारों द्वारा इसके बहुत से चित्र बनाए गए हैं। महाराजा गुलाबसिंह की यह स्वर्णिम समाधि डोगरा भूमि के उस स्वर्णिम युग का स्मारक है जिसमें छोटा-सा जम्मू राज्य एक विशाल जम्मू-कश्मीर राज्य के रूप में उभरा था। इसी समाधि के वाम भाग में महाराजा हरिसिंह जी के पिता राजा अमरसिंह जी का समाधि-मन्दिर है।

मन्दिर परिसर में यात्रियों के आवास के लिए तीन भवन उपलब्ध हैं। डॉ० कर्णसिंह जी की माता महारानी तारादेवी स्मारक धर्मशाला में निशुल्क आवास-सुविधा उपलब्ध है। इस धर्मशाला में दस कमरे और एक हॉल है। इसे डॉ० कर्णसिंह जी ने अपनी पूज्य माता जी की स्मृति

में जनकल्याण के लिए सन् 1969 में बनवाया था ।

इसी भवन के साथ लगता हुआ डॉ० कर्णसिह जी के पिता महाराजा हरिसिंह जी की स्मृति में बनाया गया 'हरि भवन' है जिसमें चौदह कमरे और तीन बड़े हॉल हैं । इसमें होटलों से सस्ती दरों पर आवास की सुविधा है । हॉल में विश्राम करने वाले यात्रियों से केवल चार रुपये प्रति यात्री किराया लिया जाता है ।

महाराजा रणवीरसिंह जी की पुण्य शताब्दी के अवसर पर तीन अक्तूबर, 1984 को धर्मार्थ ट्रस्ट जम्मू व कश्मीर द्वारा आधुनिक सुविधाओं से आपूर्ण, स्वच्छ, सुन्दर और आकर्षक 'रणवीर यात्री भवन' नाम के एक विश्रामगृह का निर्माण पूर्ण हुआ था । इसमें सुसज्जित पच्चीस कमरे हैं । इस भवन में आवास शुल्क अनुदान के रूप में लिया जाता है । मन्दिर परिसर में कुछ स्थान ऐसे भी हैं, जहां पर यात्री खुले में विश्राम कर सकते हैं ।

पूर्वकाल में मन्दिर परिसर में एक बहुत बड़ा संस्कृत का विद्यालय था, जिसमें सैकड़ों की संख्या में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को शिक्षा, भोजन और आवास की निःशुल्क सुविधा प्राप्त थी । विद्यालय में प्रथम श्रेणी से लेकर शास्त्री कक्षा तक अध्यापन की व्यवस्था थी । इस विद्यालय की स्थापना करने वाले महाराजा रणवीरसिंह पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर के संस्थापक सदस्यों में से थे । कुछ वर्ष पूर्व इस विद्यालय को केन्द्रीय सरकार ने अपने अधीन कर लिया था ।

श्री रघुनाथ मन्दिर परिसर में महाराजा रणवीरसिह जी ने एक संस्कृत पुस्तकालय की भी स्थापना करवाई थी । आज इसका नाम श्री रणवीर संस्कृत रिसर्च लायब्रेरी है । इसमें लगभग छः हजार के करीब अमूल्य और दुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थ हैं । विद्यानुरागी महाराजा रणवीर सिह जी ने बड़ी मेहनत और लाखों रुपये खर्च करके भारत के विभिन्न स्थानों से ग्रन्थ मंगवाए थे । इस कार्य के लिए महाराजा ने उस काल के संस्कृत के जिन विशेष विद्वानों को नियुक्त किया था, उनमें पं० गोकुल चन्द, पं० ब्रजलाल, आचार्य रसमोहन, पं० दिलाराम वैद्य, पं० भास्करा-

चार्य ज्योतिषी आदि प्रमुख थे । कश्मीर में पं० राजकाक के तथा जम्मू में पं० जगद्धर के निर्देशन में दुर्लभ पुस्तकों के अनुवाद करवाए गए । महाराजा के आश्रित विद्वानों ने कई पुस्तकों का सम्पादन भी किया, जिनमें नव्य चण्डीदास का 'रघुनाथ गुणोदय', साहिबराम का 'कीर्तिकल्पलता', शिवशंकर का 'रणवीर रत्नाकर', वासुदेव का 'चित्र-प्रतिभा' 'गणेशशास्त्री का 'विषहर तन्त्र', तथा लल्ल पण्डित का 'प्रश्न रत्नावली' नामक ग्रन्थ विशेप महत्व के हैं । महाराजा ने अपनी प्रजा के लाभ को दृष्टि में रख कर कुछ ऐसे विषयों पर ग्रंथ-रचना करवाई जिनका सम्बन्ध साधारण नागरिक से लेकर महाराजों तक था । इनमें रणवीर विजय, रणवीर सदाचार रत्नाकर, रणवीर संगीत महोदधि, रणवीर प्रायश्चित प्रकरण, रणवीर ज्योतिर्ममहानिबन्ध, रणवीर व्रत रत्नाकर, रणवीर चिकित्सा प्रकाश और रणवीर दण्ड विधि जैसे ग्रंथ हैं ।

संस्कृत के अमूल्य और दुर्लभ ग्रंथ रत्नों से आपूर्ण यह लायब्रेरी आज भी देश-विदेश के विद्वानों, शोधकर्ताओं और साहित्यप्रेमियों के लिए अनमोल रत्नों का खजाना है ।

शालिग्राम : स्वरूप और कथा

श्री रघुनाथ मन्दिर की दो प्रमुख विशेषताएं हैं—संगमरमर के शिलाखण्डों पर खनित विभिन्न आकारों की सुन्दर मूर्तियां तथा लाखों की संख्या में स्थापित शालिग्राम। शालिग्राम का सम्बन्ध गण्डकी नदी के साथ है। गण्डकी नदी में उत्पन्न चक्र और रेखा से युक्त जो शिला-खण्ड मिलते हैं, उन्हें शालिग्राम कहा जाता है। भारत के प्राचीन साहित्य में गण्डकी नदी की चर्चा एक पवित्र नदी के रूप में की गई है। और वह भी भारतवर्ष की पवित्र नदियों गंगा, यमुना, सरस्वती, चंद्रभागा, वितस्ता, देविका के समान स्वीकार की जाती है।[1] सतलुज, व्यास आदि नदियों के साथ-साथ इसे भी श्रेष्ठ नदी कहकर सम्बोधित किया गया है।[2] स्कन्दपुराण, पद्मपुराण, भविष्यपुराण उसे पवित्रतम नदी स्वीकार करते हैं। महाभारत के एक प्रसंग के अनुसार युधिष्ठिर द्वारा किए जाने वाले राजसूय यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए मगध के राजा जरासन्ध की पराजय आवश्यक थी। प्रत्यक्ष युद्ध में उसे हराना असम्भव था। उसे

---

1. गंगा सरस्वती सिन्धुश्चन्द्रभागा तथापश।
   यमुना च शतद्रुश्च वितस्तेरावती कुहुः।
   गोमती धूत पापा च वाहुदा च दृषदवती।
   विपाशा देविका ऋक्षुः निश्चीश गण्डकी तथा।।
   —मार्कण्डेयपुराण : भारतवर्ष विभाग वर्णन, श्लोक—16-19
2. शतद्रुच विपाशा च गण्डकी च सरिद्वरा।
   —वराहपुराण : 214/48

केवल व्यक्तिगत रूप से कुश्ती लड़कर ही हराया जा सकता था। अतः युधिष्ठिर से सलाह करके श्रीकृष्ण अर्जुन और भीमसेन को साथ लेकर मगध की ओर चल पड़े। कुरुदेश से चलकर वे पद्मसरोवर पहुंचे। वहां से आगे बढ़कर कालकूट पर्वत पार करके उन्होंने गण्डकी नदी पार की। फिर चलते-चलते गंगा को पार करके मगध देश में जा पहुँचे।[1]

गण्डकी नदी सलेमपुर-नेपाल से निकलकर शैलग्राम होती हुई गंगा में मिल जाती है। इस नदी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शिवपुराण[2], स्कन्दपुराण[3], लिंग पुराण[4] और ब्रह्मवैवर्त पुराण[5] में कथाएँ उपलब्ध होती हैं।

दभांसुर ने तपस्या करके भगवान् विष्णु से शंखचूड़ नामक पुत्र प्राप्त किया। शंखचूड़ का विवाह राजा धर्मध्वज की कन्या तुलसी के साथ हुआ। तुलसी के साथ आनन्दपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए प्रतापी शंखचूड़ ने लम्बे समय तक राज्य किया। दानव, असुर, गन्धर्व, किन्नर और राक्षस सबके सब शंखचूड़ के शासन से सुखी और संतुष्ट थे।

अपना अधिकार खो जाने के कारण केवल देवता लोग अशान्त थे। उनकी स्थिति बड़ी दयनीय थी। वे समूह बनाकर ब्रह्मा की शरण में गए और अपना कष्ट बताया। ब्रह्मा देवताओं को साथ लेकर भगवन् शंकर के निवास पर गए। वहां पर विचार-विमर्श करने के उपरांत ब्रह्मा और शंकर देवताओं को साथ लेकर वैकुण्ठ पहुँचे और श्री विष्णु से देवताओं की व्यथा कही। परस्पर परामर्श के बाद निर्णय हुआ कि शंकर उस दानव का संहार करेंगे।

भगवान् शंकर के नेतृत्व में युद्ध करके भी देवतागण शंखचूड़ को पराजित नहीं कर सके। कुछ समय बाद उन्हें पता चला कि जब तक

---

1. महाभारत : सभापर्व, अध्याय, 20
2. शिवपुराण : रुद्र संहिता, युद्धखण्ड अ०, 13-26
3. स्कन्दपुराण : वैष्णवखण्ड, अ०, 14-23
4. लिंगपुराण : पूर्वार्ध, अ०, 7
5. ब्रह्मवैवर्त पुराण : प्रकृतिखण्ड, अ०, 14-29

शंखचूड़ के पास नारायण कवच है और उसकी पत्नी का सतीत्व कायम है तब तक उसे कोई भी मार नहीं सकता। भगवान् शंकर के बार-बार अनुरोध करने पर भगवान् विष्णु ये दोनों काम करने को तैयार हो गए।

पहले उन्होंने ब्राह्मण के भेष में याचक बनकर शंखचूड़ से नारायण कवच दान में ले लिया। फिर शंखचूड़ का रूप धारण करके पतिव्रता तुलसी के महल में पहुंचे। तुलसी ने पति को युद्ध से लौट आया देख उत्सव मनाया और हर्ष से उसका स्वागत किया। देर तक युद्ध-सम्बन्धी चर्चा होती रही। उसके बाद भगवान् विष्णु शंखचूड़ के वेष में ही सो गए। रात में जब उन्होंने तुलसी के साथ हास-विलास किया तो तुलसी को सन्देह हो गया। उसने क्रोध से कांपते हुए पूछा कि उसके सतीत्व को नष्ट करके शाप का फल भोगने वाला वह मायावी कौन है ?

तुलसी के वचन सुनकर शाप के भय से भगवान् विष्णु अत्यन्त मनोहर रूप में प्रकट हो गए। उन्हें देखकर अपने पति के निधन का अनुमान लगाकर तुलसी मूर्छित हो गई। चेतना आने पर उसने रोते हुए कहा—

"भगवन् ! आपका हृदय पत्थर के समान है। आप में थोड़ी-सी भी दया नहीं है। आज आपने छलपूर्वक मेरे इस शरीर का धर्म नष्ट करके मेरे इस शरीर के स्वामी को मार डाला। आपका हृदय अवश्य ही पत्थर का है। तभी तो आप इतने कठोर इतने निर्दयी बन गए। इसलिए अब आपको मेरे शाप से पत्थर का रूप होकर पृथ्वी पर रहना होगा, क्योंकि आपने बिना किसी अपराध के अपने भक्त की हत्या करवाई है।"

यह सुनकर विलाप करती हुई तुलसी को विष्णु ने कहा—

'तुलसी ! तुम मुझे प्राप्त करने के लिए कठिन तपस्या कर चुकी हो। उस समय शंखचूड़ तुम्हें प्राप्त करने के लिए तप कर रहा था। वह मेरा ही अंश था। अपनी तपस्या के बल से तुम्हें प्राप्त करके वह गोलोक में चला गया। अब मैं तुम्हारी तपस्या का फल देना उचित समझता हूँ। तुम इस शरीर का त्याग करके दिव्य देह धारण कर मेरे साथ आनन्द करो। लक्ष्मी के समान तुम्हे सदा मेरे साथ रहना चाहिए।

तुम्हारा यह शरीर नदी के रूप में परिणत होकर गण्डकी नाम से प्रसिद्ध होगा। यह पवित्र नदी पुण्यमय भारत में मनुष्यों को उत्तम फल देने वाली होगी। तुम्हारे केश पवित्र वृक्ष होंगे। तुम्हारे केशों से उत्पन्न होने के कारण तुलसी के नाम से ही उनकी प्रसिद्धि होगी। तीनों लोकों में देवताओं की पूजा के काम में आने वाले जितने भी पत्र और पुष्प हैं, उन सब में तुलसी प्रधान मानी जाएगी।

"मैं तुम्हारे शाप को सत्य करने के लिए भारतवर्ष में शालिग्राम बन कर रहूंगा। गण्डकी नदी के तट पर मेरा वास होगा। वहां रहने वाले करोड़ों कीड़े अपने तीखे दांतरूपी औजारों से काट-काट कर उन शालिग्रामों में मेरे चक्र का चिन्ह करेंगे। इन चक्रचिह्नों के अनुसार उनके विभिन्न नाम, रूप और कार्य होंगे। जहां ये शालिग्राम होंगे, लक्ष्मी सहित मेरा वास होगा। शालिग्राम की पूजा सुख, समृद्धि, शांति और आरोग्य देने वाली और पापों का नाश करने वाली होगी। शंखचूड़ की हड्डियों से शंख की उत्पत्ति होगी। वही शंख अनेक प्रकार के रूपों में विराजमान होकर देवताओं की पूजा में पवित्र माना जाएगा। जिस स्थान पर शालिग्राम, तुलसी और शंख तीनों विराजमान होंगे वहां मेरा वास होगा।"[1]

यह कहकर भगवान् श्रीहरि मौन हो गए। उसी समय तुलसी की देह से गण्डकी नदी उत्पन्न हुई और भगवान् श्रीहरि भी उसके तट पर मनुष्यों के लिए पुण्यपद शालिग्राम बन गए।

वराहपुराण, धर्मसंहिता और मेरुतन्त्र में भी थोड़े-बहुत अन्तर के साथ इसी प्रकार की कथाएं मिलती हैं। इन ग्रन्थों के अनुसार शालिग्राम शिला में भगवान् विष्णु के साथ-साथ अन्य देवताओं की भी पूजा होती है। परंतु दूसरी मूर्तियों की जिस प्रकार प्रतिष्ठा की जाती है, उस प्रकार शालिग्राम शिला की प्रतिष्ठा नहीं होती। केवल अभिषेक मात्र से, जल चढ़ाने से ही इसका पूजन होता है। शालिग्राम शिला में भगवान्

---

1. ब्रह्मवैवर्त पुराण : प्रकृति खण्ड, अ०, 22

विष्णु सदैव विराजमान रहते हैं। इसलिए इसमें देवताओं का आह्वान और विसर्जन नहीं होता।

आर्य संस्कृति में शालिग्राम पूजन का व्यापक प्रचार रहा है। डोगरा भूमि के अनेक परिवारों के पूजागृहों में ये शालिग्राम ठाकुरजी के रूप में पूजित हैं, और ऐसे पूजागृहों को ठाकुरद्वारा कहा जाता है। प्रदेश के नगरों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में शालिग्राम पूजा का विशेष प्रचार है। इस लोकप्रियता का कारण शालिग्राम पूजा की सरलता है। किसी भी शुद्ध और पवित्र स्थान में स्थापित करके केवल जल के अभिषेक से इसकी पूजा का विधान है।

शालिग्राम शिलाओं में होने वाले चक्र और रेखाओं के आधार पर इनके स्वरूप और नाम निश्चित किए गए हैं और इनकी पूजा के भिन्न-भिन्न फल बताए गए हैं। ये शालिग्राम छोटे-छोटे मध्यम आकार के व बड़े-बड़े भी होते हैं। इनके स्वरूप और कार्य के आधार पर जो नाम रखे गए हैं, उनमें वैकुण्ठ, मधूसूदन, सुदर्शन, सहस्रार्जुन, नरमूर्ति, राममूर्ति, लक्ष्मीनारायण, वीरनारायण, माधव, गरुड़, पीताम्बर, पद्मनाभ, मत्स्य-मूर्ति, कूर्ममूर्ति, वराहमूर्ति, धरणीधर, नृसिंह, परशुराम, सीताराम, बलराम, बालकृष्ण, मदनगोपाल, वासुदेव, नारायण, केशव, गरुड़, शेष-मूर्ति, हरिहर, रघुनाथ आदि विशेष हैं।

जिन शालिग्रामों में शिवलिंग के चिह्न मिलते हैं, उन्हें भगवान् शिव के सदाशिव, त्र्यवंक, शंभु, चन्द्रशेखर, मृत्युंजय आदि नामों से अभिहित किया जाता है। जिन शालिग्रामों मे शक्ति के चिह्न मिलते हैं उन्हें गौरी, महाकाली आदि नाम दिए गए हैं।

यद्यपि शालिग्राम शिला को मुख्य रूप से विष्णु के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार किया गया है, पर यदि कोई शालिग्राम को किसी अन्य देवता का प्रतिनिधि मानकर उसकी पूजा करना चाहे तो उसे उसी देवता से सम्बन्धित मन्त्रादि का प्रयोग करना होगा। इस सम्बन्ध में चक्रविवेक, धर्म संहिता, मेरुतन्त्र, शाल, ग्रामार्चन चन्द्रिका, आदि ग्रन्थों में विस्तृत चर्चा उपलब्ध होती है।